

गागर में सागर

(प्रथम भाग)

(इतिहास, भूगोल, भ्रमण-वृत्तान्त और ऐतिहासिक स्त्री, पुरुषों के जीवन-वृत्तान्त आदि से सम्बन्ध रखने वाले, छोटे-छोटे ६१ लेखों का संग्रह

लेखक—

गुरांदित्ता खन्ना

आरंभ के केवल तीन लेखों के लेखक

म० दिवानचन्द वर्मा

प्रकाशक—

भारत पुस्तक भण्डार

कटड़ा आहलूवाला अमृतसर

प्रथम संस्करण १०००] [मूल्य २)

१९४४.

राहुल जी को

भेंट

____

____

____

पहिले इसे !

पोथी-पत्रा उलटते-पुलटते रहने का तो शौक है ही—आज से नहीं, वर्षों से। इतिहास, भूगोल, भ्रमण-वृत्तान्त और ऐतिहासिक स्त्री-पुरुषों के जीवन-वृत्तान्त ज्यादा रुचिकर रहे हैं, और अब भी हैं। प्रस्तुत पुस्तकों में, ऐसे ही महत्वपूर्ण और सर्वोपयोगी विषयों से सम्बन्ध रखने वाले, मौलिक और भिन्न-भिन्न विद्वानों के ग्रन्थों और समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में छपे लेखों के—उनके महत्वपूर्ण वाक्यों और वाक्यांशों सहित—सम्पूर्ण या आंशिक सार-स्वरूप, ६१ लेखों का संग्रह है। सारा संग्रह, छः शीर्षकों या भागों में बँटा हुआ है। प्रत्येक शीर्षक या भाग, अपने-अपने लेख-समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है और प्रत्येक लेख, अपने-अपने विषय का मोटा-मोटा वर्णन है।

हिन्दी में—जहाँ तक अपनी जानकारी है—अपने ढंग की यह पहली ही चीज है। चीज अच्छी या बुरी—यह तो विद्वान् पाठक और सत्समालोचक ही बतलायेंगे पर मित्रों ने इसे बहुत पसन्द किया है। उन्होंने तो यहां तक कहा है कि यह अपने ढंग का एक छोटासा बाल-विश्वकोष है, जिसमें अति संक्षेप रूप से बहुत कुछ भरा हुआ है। अथवा यह एक साहित्य-वाटिका है, जिसमें रंग-बेरंगे फूलोंकी कई क्यारियां हैं और सभी क्यारियाँ सुन्दर एवं स्वास्थ्यप्रद हैं। आत्मा को आनन्द देने वाली और उस में नव-जीवन का संचार करने वाली हैं।

हो सकता है, यह बढ़ावा ही हो, उत्साहदान ही हो अथवा ठकुर सुहाती ही हो—मुझे इससे कुछ वास्ता नहीं। मेरे दिल में इससे कुछ अभिमान नहीं। अभिमान किस बात का! "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा"—और वह भी अपने स्वार्थ के लिये, अपने सन्तोष के लिये।

खेद है कि जितना संतोष इस पुस्तक से मुझे मिलना चाहिये था, नहीं मिला। मिलता, यदि मैं ठीक उसी आकार-प्रकार और रूप-रंग में पुस्तक पेश कर सकता, जिसमें मैंने लिखी थी। इस में कुछ भी घटा-बढ़ा न करना-कराना पड़ता और आरम्भ के तीन लेख भी अपने ही दे सकता। क्यों न दे सका और क्यों घटा-बढ़ा करना-कराना पड़ा, यह न बतलाना ही ठीक है। बदकिस्मती से, **मैं विचारों की दृष्टि से बौद्ध हूं** और साथ ही मार्क्स के विचारों को भी पसन्द करता हूं। खैर!

अपनी ओर से पुस्तक सर्वांग सुन्दर और त्रुटियों से रहित बनाने की कोशिश की है, पर ख्याल है कि इसमें कई त्रुटियाँ और प्रूफ वगैरः की गलतियां रह गई होंगी। पता लगने पर, अगर इसके दूसरे संस्करण की नौबत आई और परिस्थितियों ने इजाजत दी तो जरूर उन्हें दूर करने की कोशिश की जायगी।

इस पुस्तकको घटाने-बढ़ाने और संशोधनादि करने कराने का अधिकार लेखक को, और केवल लेखक को ही है। प्रकाशक इसमें लेखक के बादभी कोई सशोधन या परिवर्तनादि नहीं करें करायेंगे। इसके भाषान्तर करने-कराने का अधिकार भी लेखकको ही है। अन्त में मैं उन तमाम लेखकों, सम्पादकों और प्रकाशकों का हृदय से धन्यवाद करता हूं, जिनके ग्रंथों और लेखों की सहायता से मैंने यह पुस्तक लिखी है।

खेद है कि इच्छा रहते भी मैं अपने सहायक ग्रन्थों और लेखों की सूची—बेशक वह बहुत लम्बी है—नहीं दे सका। इसके लिये मैं क्षमा मांगता हूं।

विनीत—

अक्तूबर १९४४ **गुरांदित्ता खन्ना**

लेख सूची

(१) ऐतिहासिक और भूगोलिक २५ लेख

(२) भ्रमण-वृत्तान्त ५ लेख

धार्मिक-नेता आदि ७ लेख

वीर-मणिमाला लेख

रमणी रत्नमाला ४ लेख

गुरू घर १२ लेख

गागर में सागर

ऐतिहासिक और भूगोलिक

२५ लेख

धरती

यह धरती बहल के सींग पर अटक रही है, इसे शेषनाग ने उठाया हुआ है और शेषनाग कछुए की पीठ पर कुण्डलाकार बैठा है। इसे किसी महाद्वैत ने अपनी पीठ पर रक्खा हुआ है अथवा यह एक बड़े मेंडक की पीठ पर स्थित है और वह मेंडक एक महा समुद्र में तैर रहा है—इस प्रकार की अनेक कल्पनाएं संसार के भिन्न भिन्न देशों ने की हुई हैं।

कुछ देशों वाले लोग मानते हैं कि इसकी रचना एक पहाड़ी कौए ने की थी। पृथ्वी जल में डूबी हुई थी, वह इसे चोंच से पकड़ कर बाहर लाया। कुछ कहते हैं कि यह एक दैत्य शरीर से बनी हुई है, वह दैत्य परमात्मा से वैर रखता था, इस लिये परमात्मा ने उसे मार डाला और उस के शरीर के दो टुकड़े किये। एक से बनाई जमीन तथा एक से बनाया आसमान।

भारतीय ग्रन्थों से जाहिर होता है कि सृष्टि से पहिले अंध-

कार ही अन्धकार था, तथा सारा आकाश प्रमाणुओं से परिपूर्ण था। प्रमाणु कारण रूप से सूक्ष्म थे। जिस समय इन्होंने स्थूल अवस्था धारण की इन से पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु बनी। खाली स्थान आकाश कहलाने लगा। इसी समय में मनुष्य तथा अन्य जीव जन्तुओं का शारीरिक ढाँचा इन्हीं पाँच तत्वों से युवावस्था में उत्पन्न हुआ। उसी समय ऋषियों को वेदों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने शनैः २ उसका प्रसार किया। आगे मनुष्य ने स्वयं नवीन २ आविष्कार किए। एक छोटी सी लकड़ी तथा एक पत्थर का टुकड़ा यही उन के हथियार न रह कर उन के पास बहुत कुछ हो गया। गाय आदि का दूध कृषि तथा कला-कौशल का ज्ञान भी बढ़ गया। ज्योतिष शास्त्र की गणना भी तभी से प्रारम्भ हुई।

आज सारी दृश्यमान पृथ्वी एशिया, योरप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, उत्तरी अमरीका और दक्षिणी अमरीका—इन ६ महाद्वीपों में बँटी हुई हैं। कुल पृथ्वी का क्षेत्र फल १६ करोड़ मील से ज्यादा है। समस्त जन संख्या दो अरब से भी अधिक है। जिस में आर्य जाति, मंगोल जाति और हब्शी जाति—यह तीन मुख्य जातियाँ रहती हैं।

पृथ्वी का आकार नारंगी जैसा है। इसके उत्तरी और दक्षिणी सिरे जो ध्रुव कहलाते हैं कुछ चिपटे हुए हैं। यह एक सैकण्ड में १८॥ मील के हिसाब से सूर्य के चारों ओर घूमती है चन्द्रमा इसके चारों ओर घूमता है।

भारत की महानता (२)

पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित जन समुदाय के हृदय में यह एक भ्रम हो चुका है कि प्राचीन भारत सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा, साहित्य, कला, विज्ञान तथा आचारादि विषयों में एक पिछड़ा हुआ देश था। भूल जाते हैं भारत का अतीत गौरव तथा विदेशी विद्वानों का आँखों देखा भारत वर्णन, आयो उसका दर्शन करें।

प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का प्रधान अंग था राष्ट्रीयता। कुछ लोग बिना सोचे विचारे तर्क वितर्क करने लगते हैं कि भारत वर्ष में ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के बाद जातीयता का विकास हुआ, यह बात नितान्त थोथी तथा निराधार है। हम यदि विशाल भारत में फैले हुए बुद्ध विहारों, हिन्दू तीर्थों तथा शंकराचार्य के मठों पर विवेक दृष्टि से विचार करें तो मालुम होगा कि इनके मूल में जातीय संगठन एवं राष्ट्रीय एकता का कितना जबरदस्त सिद्धान्त काम कर रहा है। सर हैनरी मन के शब्दों में राष्ट्रीय भावों की उत्पत्ति सबसे पहले भारत वर्ष में ही पाई जाती है। यहीं से यह भाव पश्चिम की ओर आए।

राष्ट्रीय एकता के साथ २ वीरता, धीरता भी थी, तथा इन गुणों के परिणाम स्वरूप भारतीय शासन संसार भर में विस्तृत था। टाड महोदय कहते हैं कि इंग्लैंड के सम्राट क्वयर डी लाइन (coer de loin) इतने समय तक आस्ट्रिया की तंग कोठरी में कैद न रहते अगर राजपूत उन की प्रजा होती। भारतीयों

की वीरता का सुन्दर चित्र उपस्थित है। राज्य विस्तार पर विदेश प्रेमी विदेशी मत ही सुनें। विद्वान चारल्स मेरिस बतलाते हैं कि 'इतिहास की आदिम अवस्था में आर्यों का साम्राज्य इतना विस्तृत था कि कुछ भाग के अतिरिक्त समस्त योरप और सम्भवतः उत्तरी रूस पर्याप्त साम्राज्य, तथा ऐशिया में ऐशिया माइनर काकेशिया, मीडिया, पर्शिया, भारत और मध्यवर्ती बक्टीरिया तक इस में सम्मिलित था।

प्राचीन भारत की शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के प्रमाण में तक्षशिला, नालन्दा, अजन्ता, अवन्तिका, काशी, कंची, नवद्वीप, केनहेरी, नासिक तथा पांडुपर आदि विश्व विद्यालयों का नाम स्मरण ही बहुत है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनत्सांग भारत भ्रमण करते २ नालन्दा पहुंचा। द्वारपाल ने अपना आशय समझाने के लिये २७ भाषाएं बोलीं, २८वीं चीनी भाषा बोलने पर वह भाव प्रदर्शन में सफल हो सका। आज किसी विश्व विद्यालय में इतना विद्वान द्वारपाल तो क्या प्रोफेसर भी ढूंढने से ही मिलेगा।

इसी प्रकार भारतीय साहित्यके दर्शनके लिए अभिज्ञानम् शाकुंतलम् सरीखे नाटक, इतिहास बद्ध प्रमाण के लिये रामायण, महाभारत सरीखे महा-काव्य, वैद्य-विद्या, तथा सुश्रुत-चिकित्साके लिये चरक, प्रकाश,तथा सुश्रुत आदि ग्रन्थ उपस्थित हैं। ज्योतिष शास्त्र तथा भाव गणित की उज्वलता के खण्डन में महा पण्डित आर्य भट्ट तथा आचार्य वाराहमिहिर बाधक हैं। आइये विज्ञान पर भी दृष्टि डालें। जिस विद्या को सीख कर आज यूरप फूला नहीं

समाता वह तार बेतार प्राचीन काल से भारत में चली आ रही है। महाराज शुक्राचार्य ने राजा को इस बात का आदेश दिया कि वह १० हजार कोस की बात एक ही दिन में जान ले।

'अयुत कोश्जाँ वार्ता हरेक देन ति नैन वे'

तार तथा बे तार की बात जाने दीजिये यहाँ तो लोग मन शक्ति द्वारा ही संदेश भेजा करते थे। अभी १८५१ ई० के आस पास की बात है कि योरोपियन विद्वानों ने भारत की इस आलौकिक शक्ति का अनुभव किया था। बेतार यन्त्र का अविष्कारक मार्कोनी भी इस बात को सहर्ष स्वीकार करता है कि भारत में मानसिक संदेश भेजने वाली कोई गुप्त विद्या उस समय लोगों को ज्ञात थी। इसके अतिरिक्त विज्ञान के अन्य धन्दों में भी भारतीय पूर्ण रूप से निपुण थे। प्रोसे कहता है—भारतीक तुलनात्मक दृष्टि से सब से अच्छे जहांज बनाते थे, जिन मे १००० टन तथा इस से भी अधिक बोझ जा सकता था।

कृषि शास्त्र की ओर ध्यान देने से पता चलेगा कि यह स्वर्ग भूमि इस विषय में भी गुरू स्थान को प्राप्त है। एच० डी० राली विसन आई-ई-एस० कहता है-असुर बाणी पाल (असीरिया) ने रूई और ऊन के वृक्षों के लिए भारत को आदमी भेजा था, जेसा कि इसने सुन रक्खा था। इसने ६६८ से ६२६ ई० पूर्व तक राज्य किया। योरोप के रंग मंच पर खड़े हो कर सभ्यता की प्राचीनता का ढोल पीटने वाले यूनानियों का भी हाल सुनिए।

सिकन्दर का सेनापति अरिष्ट बुजंस कहता है कि कपास ऊन का पेड़ होता है, उसी का सेना नायक अमीराल नियर्डस अपने देश बासियों को सूचित करता है कि भारत वर्ष में ऐसे पेड़ होते हैं जिनसे भेड़ के रोऊं के समान ऊन निकलती है।

इतने गुणशाली होने के बावजूद भारतीय आचार भी संसार प्रसिद्ध था, बाह्य देशों पर उस की धाक थी। बिन्दुसार ने सिल्युकस को यूनानी शराब का नमूना भेजने के लिये लिखा। आज्ञापालन के साथ २ सिल्युकस ने उत्तर दिया 'दुःख है यूनानियों का दार्शनिकों से यह व्योपार योग्य नहीं'। आह दूसरे देश भी इसके आचार पर गौरव रखते थे।

यह है भारत की प्राचीन तथा संक्षिप्त गौरवमयी गाथा तथा पश्चमीय सभ्यता से प्रभावित जन समुदाय को विश्वास दिलाने का साधन, उनके इष्टों की ज़बानी।

भारतवर्ष का इतिहास (३)

(हिन्दु मुसलिम युग)

ऐतिहासिक और भूगोलिक दृष्टि से भारत वर्ष का बड़ा महत्व है। इसका समस्त क्षेत्रफल १८०८६८० वर्ग मील है। ७०६५८३ वर्ग मीलमें देशी राज्य फैले हुए हैं और शेष १०१०९७ में अंग्रेजी अमलदारी है। वैसे समस्त भारत पर अंग्रेजी सत्ता का ही बोल-बाला है। सन १९४१ की मनुष्य गणना के अनुसार कुल जन संख्या साढ़े सैंतीस करोड़ है। जिसमें हिन्दु, मुसलमान तथा अन्य दूसरी-दूसरी कई जातियाँ शामिल हैं। हिन्दु सब से अधिक हैं।

हिन्दु या आर्य, भारतवर्ष में कब तथा कैसे आये या कहीं से नहीं आये, यह अभी निश्चित नहीं। परन्तु यह एक मानी हुई बात है कि आर्यों के जमाने में लोगों का जीवन उच्च तथा आडम्बर रहित था। ब्रह्म तेज तथा क्षात्र तेज दोनों की महत्ता थी। राजा लोग राज्य करते थे परन्तु सब प्रजा पर ऋषि मुनियों का ही बोल बाला था। इस समय में लोग सुखी तथा स्वाधीन थे, अब उनके पास पत्थर के ही हथियार न रह कर जीवन के बहुत से साधन जुट गए थे। कृषि आदि के विषयों का भी बहुत ज्ञान बढ़ गया था। ऐसा समय बहुत देर तक रहा।

महाभारत से कुछ काल पहले लोगों में व्यक्तिगत भावना का विकास हुआ। आत्माकी आवाज की ओर ध्यान न देते हुए लोग

इन्द्रियों के दास बनने लगे। ऐसे लोगों के हाथ ही राज्य प्रबन्ध होने के कारण इस देश को महा भारत के दिन देखने पड़े। सर्वस्व सम्पति, बुद्धि, बल तथा वैभव इस महा यज्ञ में स्वाहा हो गया। परन्तु देश में व्यसनी लोगों की ही महत्ता रही। धर्म के नाम पर अत्याचार होने लगे। धर्म के ठेकेदार भी उस समय के अनुसार ही थे। फल स्वरूप लोगों में माँस भक्षण, मदिरा बढ़ी। यज्ञों में आहुति ने नाम पर हर प्रकार के पशु चढ़ाए जाने लगे। लोग इस समय से तंग आगए, ऐसे समय महात्मा बुद्ध तथा महावीर स्वामी का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने शांति तथा समता का पाठ पढ़ाया, कुछ समय बाद बुद्ध लोगों का जीवन भी आडंबरमय होने लगा।

इस समय में स्वामी शंकराचार्य हुए। उन्होंने महात्मा बुद्ध की तरह राजाओं को अपने हाथ में लिया। डा० भगवान्दास जी का कथन है कि बौद्ध धर्म शंकर के शास्त्र उतना परास्त न हुआ जितना सुधन्वा के शस्त्र से।

३२६ ई० पू० सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया पर मुंह की खाकर लौट गया। ३२२ ई० पू० मौर्य साम्राज्य स्थापित हुआ जो १०५ ई० पू० तक रहा। उसे नष्ट किया पुष्प मित्र ने जो मौर्य साम्राज्य का सेनापति था। पुष्प मित्र का राज्य ७६ ई० पू० तक रहा। वह शुंग वंश ने नाम से प्रसिद्ध है। उसके बाद कण्ठवंश का राज्य चला। आन्ध्रों ने उसे नष्ट कर दिया। इसी समय शक और कुशान आदि जातियों के लोग बाहर से आगये, शकों ने ३०० सौ वर्ष तक राज्य किया। कुशानों का कणिश्यक बड़ा प्रतापी राजा हुआ। वह दूसरा अशोक कहलाया। ३२० ई० में

गुप्तवंश की नींव पड़ी। गुप्तों का जमाना स्वर्णयुग कहलाता है। ६ठी सदी में हूणों के हमलों से गुप्त-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। सातवीं सदी में हर्ष हुआ। हर्षका राज्य बहुत सुन्दर था। भारतीयों ने उपनिवेश इससे बहुत पहिले बसाने शुरू कर दिये थे। कम्बोडिया पहिली सदीमें बसा था। ६५० से १२०० तक राजपूतों का जमाना आया। उन्होंने भी खूब उन्नति की। ७१२ में मुसलमानों का पहिला हमला सिंध पर हुआ, सिंधी हार गए। १००१ से १०२५ तक महमूदने १७ हमले किये। सोमनाथका मन्दिर लूटा। ११७५ में गोरी ने हमला किया। ११९१ में पृथ्वीराज मारा गया। मुसलिम-राज्य जमने लगा। १२०६ में कुतबद्दीन ने गुलाम-वंश का नीव डालो। १२९० तक ६ बादशाह हुए। रजिया भी इनमें एक थी। १२९० से १३२० तक खिल्जी-वंश ने राज्य किया। अलाउद्दीन इसी वंश का राजा था। १३२० से १३८८ तक तुगलक वंश ने राज्य किया। मूर्ख मुहम्मद तुगलक इसका प्रसिद्ध बादशाह हुआ। १४१४ में सय्यद वंशके हाथ राज्य आया। १४५१ में लोधी वंश की नींव पड़ी। १५२६ में बाबर ने मुगल-राज्य की नींव डाली। यह कहने को १७६१ तक रहा। इससे पहिले सुलतानशाही के अन्त होने पर उत्तरीय और दक्षिणीय भारत में अनेक राज्य कायम हो चुके थे। बहमनी-राज्य उनमें बड़ा था। अकबर की नीति ने मुगल-राज्य को बढ़ाया और औरंगजेब की नीति ने तबाह किया। सिक्खों और मरहठों ने जोर पकड़ा। आखिर अंग्रेजों ने सब को दबा लिया।

भारतवर्ष का इतिहास (४)

(पश्चिमी-युग)

१४६८ में पुर्तगाल का वास्कोडी गामा आया । कालीकट में कोठी खुली । फिर डचों और डेन्सों ने कोठियां खोलनी शुरू कर दीं । उनके बाद अंगरेजों की ईस्टइन्डिया कम्पनी ने और फ्राँसीसियो ने कोठियों का जाल बिछाना शुरू किया । फिर धीरे-धीरे सभी व्यापारियों से बदल कर हुक्मरान बनने लग गए । अब लगे आपस में लड़ने । देसी नरेशों को आगे करके अंग्रेज और फ्राँसीसी बहुत लड़े । फलतः फ्राँसीसी नाम मात्र को रह गए और अंग्रेज सर्वे-सर्वा बनने शुरू हो गए । १७५७ में पलासी की लड़ाई के बाद अंग्रेजों के पैर बंगाल में जम गए । १७६४ में बक्सर की लड़ाई के बाद बंगाल बिहार से लेकर अवध तक का प्रान्त अंगरेजों के अधिकार में आ गया । इसके बाद अनेक घटनाओं से गुजरते हुए, अनेक सन्धि-विग्रह करते हुए वेलजली के जमाना में (१७६८-१८०५) मरहटों की तीसरी लड़ाई के बाद अंग्रेजी-राज्य भारतवर्ष में दृढ़ हो गया । लार्ड एलनबरा (१८४२-४४) के जमाना में अंगरेजों ने काबुल में प्रवेश किया । सिंध के अमीरों को भी हारना पड़ा । १८४८ से ५६ तक का समय लार्ड डलहौजी का है । इसके जमाना में पंजाब अंगरेजी राज्य में मिला लिया गया । लेप्सनीति के अनुसार कई देसी राज्य हड़प लिये गए । रेल, तार, डाक और शिक्षा का प्रचार हुआ । फलतः लार्ड कैनिंग के जमाना (१८५६ से ५६) में

सिपाही-विद्रोह हुआ, जो सिक्खों और गोरखों की सहायता से आखिर दबा दिया गया। १ नवम्बर १८५८ को महारानी विक्टोरिया की घोषणा हुई। ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का अन्त हुआ। इंग्लैंड की सरकार के हाथ में भारत आगया।

१८६२ से १८८० तक तीन बार अकाल पड़ा। लाखों ही आदमी मर गये। लार्ड डफरिन के समय (१८८४-८८) में ब्रह्मा पर पूरा अधिकार हो गया। इसी बीच कांग्रेस की नींव पड़ी। १८९९ से १९०५ तक लार्ड कर्जन का समय है। उस में फिर बड़ा भारी अकाल पड़ा। वंग-भंग हुआ। लार्ड मिण्टो के समय में १९०५ से १९१० तक वंग-भंग के कारण देश में घोर अशान्ति रही। मिण्टो-मार्ले सुधार-स्कीम बनी। १९१० से १९१६ तक का समय लार्ड हार्डिंग का है। उस में सम्राट जार्ज भारत में आये। दिल्ली-दर्बार हुआ। वंग-भंग का अन्त हुआ, परन्तु क्रान्तिकारी फिर भी प्रसन्न न हुए। उन्होंने मौका पाकर एक बार हार्डिंग पर बम फेंक दिया। प्रथम यूरोपियन-युद्ध भी हार्डिंग्ग के जमाना में शुरू हुआ। सन १९१६ से २२ तक का समय लार्ड चेम्सफोर्ड का है। युद्ध उनके जमाने में भी रहा, और उसके बाद राष्ट्रीय आन्दोलन ने भी उन्हीं के काल में जोर पकड़ा। १९१९ में युद्ध समाप्त हुआ, नई सुधार-योजना लागू हुई। रौलट-ऐक्ट पास हुआ। भारत वासियों ने उसका विरोध किया। जलियाँ वाला बाग में गोली चली। असहयोग आन्दोलन की नींव पड़ी। लार्ड रीडिंग (१९२१-२५) के जमाने में अंग्रेजों के दमन और मुसलमानों के साथ छोड़ देने से असहयोग-आन्दोलन शान्त हो गया। प्रिंस आफ वेल्ज आये। इर्विन (१९२६-३१) के समय कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया। गाँधी

जी ने नमक-सत्याग्रह किया । साईमन-कमीशन आया । भारत ने बाईकाट किया । इंग्लैण्ड मे गोलमेज-कान्फ्रेन्स हुई । गांधी-इरविन समझौता हुआ । फिर जल्दी टूट भी गया । सरकार ने अछूतों को हिन्दुओं से पृथक् करने की चाल चली । गांधी जी ने प्राणों की बाजी लगाकर चाल सफल न होने दी । फिर नये सुधार आए । १९३७ मे कांग्रेस ने सुधारों को अपना कर ६ प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्री-मण्डल कायम किए । बाद में सरकार से मतभेद होने के कारण खुद ही तोड़ दिये । १९३९ मे विश्व व्यापी युद्ध चल रहा है । उधर ४२ से कांग्रेस की भी लड़ाई है । अभी इसका निपटारा नहीं हुआ । आज कल लार्ड वेवल का जमाना है । इससे पहिले लार्ड लिनलिथगो का जमाना था । वह बहुत समय तक वायसराय के पद पर रहे ।

सतिप्रथा का इतिहास (५)

वैदिक-काल में-सती प्रथा थी या नहीं, कुछ निश्चित नहीं है। पौराणिक-काल थी, निश्चित है। उस काल की अनेक घटनाओं का पता महाभारत, श्रीमद्भागवत और विष्णु, पुराण आदि से मिलता है। स्मृतियों में केवल मनुस्मृति में सती-प्रथा का उल्लेख नहीं है और प्राय: सब में है। अरिष्टोब्यूलस, सिसरों, प्लूटार्क, प्रोपासियस आदि प्राचीन विदेशियों ने भी भारत की सती प्रथा का जिक्र किया है। खुद अलेकजेण्डर ने पंजाब में सती दाह देखा था। सतीदाह की रस्म सारे भारत में समान रूप से थी या नहीं, कुछ ठीक नहीं है। दक्षिण में सर्वत्र थी। १७वीं सदी के मध्य-भाग में मदुरा के नायक की मृत्यु होने पर उसकी अनेक रानियां सती हुईं। १८वीं सदी में महाराष्ट्र और राजपूताना में भी यह प्रथा खूब थी।

बंगाल में भी सति-प्रथा जोरों पर थी। मध्य-प्रदेश में भी अनेक सती-स्मारक हैं। पंजाबभी खाली नहीं है। महाराजा रणजीतसिंह के मरने पर उसकी दासियों सहित चार रानियां सती हुई थीं। केवल उड़ीसा में कुछ कम उदाहरण मिलते हैं। मुसलमान बादशाह सती-प्रथा के विरुद्ध थे। अकबर ने जोधपुर के राजकुमार की मृत्यु होने पर उसकी स्त्री को सती होने से रोका था। जहाँगीर ने भी एक कानून जारी किया था पर फल कुछ न हुआ। चैतन्य महा-प्रभु को भी यह प्रथा पसन्द न थी। अंग्रेजों का आते ही इस ओर ध्यान गया। १६६७ में मार्कस

वेलजली ने चाहा कि इस कुप्रथा को बन्द कर दे, पर न कर सका। १८१३ में लार्ड मिण्टो ने भी कोशिश की पर फल कुछ न हुआ। उलटा जोर बढ़ा। केवल दक्षिण-बंगालमें उस साल ६०० सती-दाह हुए। लार्ड हेस्टिंग ने पति की मृत-देह के साथ जीवित स्त्री को समाधिस्थ करना कानूनन बन्द कर दिया। यह प्रथा जोगी-जाति में थी। १८२८ में लार्ड विलियम बेन्टिक ने फिर उद्योग किया। सर्वोच्च न्याय-सभा ने बेण्टिक का साथ दिया। उसी समय राजा राम मोहनराय ने भी सती-प्रथा बन्द कराने के लिए कमर कसली। आखिर ७ दिसम्बर १८२९ को कानूनी तोर पर सती-प्रथा को बन्द कर दिया गया। कानून भंग करने वाले को सजा देने का विधान बना। कट्टर पन्थियों ने विरोध किया, पर फल कुछ न हुआ। उस समय के सम्राट तक भी दौड़ लगाई और प्राविकौंसिल तकको भी। ब्रिटिश-भारत के बाद देसी राजाओं की बारी आई। १८४६ की २३वीं अगस्त को जयपुर राज्य ने कानून पास किया। फिर धीरे-धीरे औरों ने भी पास कर दिया। यह समय लार्ड हार्डिंग प्रथम का था।

इस प्रकार धर्म के नाम पर स्वर्ग के नाम-पर सैंकड़ों और शायद हजारों वर्ष तक स्त्रियोंका बलिदान जोरोंपर होता रहा पर आखिर बन्द होगया। स्त्री इस लोकमें भी पति-सेवा करे और जाकर पतिलोक में भी पतिसेवा करे, यही हमारे शास्त्रोंका कथन है। शायद उसीको सामने रख कर सतीदाह का नियम बना हुआ है पर अफसोस कि आज यह नियम चल नहीं रहा है और अब चलेगा भी नहीं।

रावण की लंका कहां थी ? (६)

(एक नया विचार)

भगवान् राम की अयोध्या जहाँ थी, वहीं अब भी बतलाई जारही है—जिला फैजाबाद में, परन्तु रावण की लंका कहाँ थी, यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका । बहुत से लोग तो सीलोन को ही लंका कहते चले आ रहे हैं । कई उस की स्थिति सीलोन के पश्चिमोत्तर मालद्वीप को निर्धारित करते हैं । कई पूर्व की ओर झुक कर मलाया प्राय-द्वीप के निकट बतलाते हैं और कई कहते हैं कि लंका अब रही ही नहीं । राम के अयोध्या लौटने पर समुद्र में डूब गई । यह तो है जल में लंका मानने वालों की बात । कुछ थल में भी मानते हैं । इन में कई आसाम और कई विन्ध्या पर्वत पर कहते हैं । नई छान-बीन से पिछली बातही ठीक जँचती है । लंका मध्य-भारतमें विंध्यगिरिकी अमर कंटक चोटीपर ही थी । राम-चरित्र की पूर्ण घटना अवधी प्रचारांचल में ही हुई थी । अवधी बोलने वाले प्रान्त के उत्तरी छोरपर अयोध्या और दक्षिणी छोरपर अमरकंटक है, जो बघेल खण्ड के अन्तर्गत है । अमर कंटक से परे छत्तीसगढ़ का प्रान्त है, जो प्राचीन काल में महाकौशल कहलाता था और जिस में दण्डकारण्य फैला हुआ था । वाल्मीकीय रामायण के अनुसार, लंका अयोध्या से दक्षिण की ओर थी । राम अयोध्या से चल कर दक्षिण की ओर जा कर चित्रकूट में बहुत दिनों तक रहे । वहां से दण्डकारण्य को गए और वहीं रावण सीता को हर कर

ले गया लंका द्वीप में । अब स्वाल यह है कि अगर रावण की लंका अमर-कंटक की चोटि पर थी, तो अमर-कंटक के पास सागर कहाँ है, जिसे पार कर के हनुमान लंका में गए थे ? स्थल के बीच सागर कैसे हो सकता है । इत्यादि—

इसका एक ही उत्तर है, वह यह कि बड़े-बड़े जलाशय भी सागर ही कहलाते हैं । ऐसे सागर भारत में कई हैं । दण्डकारण्य इस प्रकार के सागरों से भरा पड़ा था । दण्डक शब्द का शाबरी भाषा में अर्थ ही "जलाशय" या जल प्लावित है । वही अर्थ जन स्थान का होता है, जो शब्द ही जेतान का संस्कृत रूप है । अमर कंटक की तली में आज तक एक बड़ा भारी दलदल है, जिसको अभी तक कोई पार नहीं कर सका है । राम के समय निश्चय ही वहां पानी का भारी संग्रह होगा, जिसे सागर की उपमा दी गई होगी । हनुमान इसी को तैर कर लंका पुरी पहुंचे थे । राम ने इसी पर सेतु बाँध कर वानरी सेना को लंका में प्रवेश कराया था । इस स्थल में शिव के मन्दिर भी बहुत हैं । अमर कंटक के दक्षिण में अब तक लवन नाम का परगना है । पुराने जमाने में कदाचित वह धरती बहुत नीची—शायद पानी से भरी रही होगी । कालांतर में सब मिट गया, ऐसा होसकता है । अमर कंटक की चोटी पर लंका मानने से राम की नर-लीला में कोई बाधा नही आती । राम और रावण की सहायक जातियों का भी पता लग गया है । राम की सहायक जातियां उरावां और शवर । रावण की सहायक जाति थी गौंड । उराव प्राचीन काल में वानर कहलाते थे । शबरों की कदाचित ऋक्ष संज्ञा रही होगी । यह दोनों जातियाँ अभी तक अमरकंटक के आस-पास पाई जाती हैं । एक बात और कि पंचवटी गोदावरी के किनारे थी । ठीक !

गोदावरी का द्राविडी और जंगली जाति में नदी अर्थ है। इस का भी समाधान हो जाता है। गोदावरी शब्द अब भी विलासपुर जिले में प्रचलित है। सारांश यह कि रावण की लंका मध्य भारत में थी। भारत से बाहर नहीं।

रामचरित पर 'भास' की कल्पना
(७)

बहुत पुराने जमाने में महाकवि "भास" भी संस्कृत के एक बहुत बड़े कवि और नाटककार हो गए हैं। वह कालीदास से भी पहिले हुए हैं। विद्वत समाज में उन की बहुत कदर है। रामचरित का जो खाका उन्होंने खैंचा है, इतिहासज्ञों के लिये विचारनीय है। मोटे तौर पर जरा देखना चाहिये—

कौशिकी नदी के तट पर विश्वामित्र ने यज्ञ आरम्भ किया। यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण भी वहां आए और जनक की ओर से उसका भाई कुशध्वज भी आया। सीता और उर्मिला भी उसके साथ थीं। एक दूसरे का परिचय पाकर सब आनन्दित हुए। अहल्या-उद्धार से कुशध्वज बहुत प्रभावित हुआ। उसनें कहा—अगर मेरे भाई ने धनुष भंग की शर्त न लगाई होती तो मैं सीता राम को ब्याह देता। इसी समय रावण के

पुरोहित ने आकर कहा कि सीता को रावण ब्याहना चाहता है। राम ने इसका अनुमोदन किया। कुशध्वज ने ध्यान किया। शिव जी का धनुष वहीं प्रकट हो गया। राम ने उसे तोड़ डाला। इस से पहिले ताड़िका को मार गिराया। कुशध्वज ने चारों भाइयों को चारों कन्याएं ब्याह देना स्थिर कर, बरात को जनकपुर लाने के लिये दशरथ को सन्देश भिजवा दिया। रावण का पुरोहित बहुत जला। राम ने मारीच और सुबाहु को भी उचित दण्ड देना स्थिर किया और दिया।

सर्वमाय से राक्षसों के दमन और राम के विवाह आदि की खबरें सुन कर रावण का नाना माल्यवान बहुत चिंतित हुआ। उसने एक राजनीतिक चाल के तौर पर परशुराम को राम के विरुद्ध उभाड़ा। परशुराम आग बबूला हुआ, जनकपुर पहुंचा। राम ने उसे शान्त कर दिया। जाता हुआ परशुराम दण्डक बन में मुनियों की रक्षा के लिए अपना धनुष राम को दे गया। जब माल्यवान ने यह समाचार सुना तो और ज्यादा व्याकुल हुआ। उसने मन्थरा के शरीर में प्रवेश करने के लिये शूर्पनखा को जनकपुरी में भेज दिया। राम अभी सोचही रहे थे कि किस प्रकार दण्डक-बन में जाकर मुनियों की रक्षा करें कि इतने में मन्थरा ने आकर उनके पिता के नाम कैकेयी का एक पत्र दिया, जिस में अपने धरोहर दो वरों के बदले में राम को १४ वर्ष का बनवास और भरत को राज्य देने के लिये लिखा हुआ था। राम ने पत्र का जिक्र दशरथ से किया, और दशरथ, जनक भरत और प्रजावर्ग को शोक सागर में डुबोकर राम सीता और लक्ष्मण के साथ बन को प्रस्थान कर गये। भरत ने पूजा के लिये राम की पादुका लेली। बन में सीता को अकेली पाकर रावण हर ले

गया। जटायु ने छुड़ाने की कोशिश करते हुए अपने पंख कटा लिये और जब राम आए तो उन्हें सब हाल सुनाया। राम, सीता को खोज रहे थे कि शबरी ने बिभीषण का पत्र दिया। बिभीषण रावण को त्याग कर ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के साथ रह रहा था। राम ऋष्यमूक पर्वत की ओर चल दिये। रास्ते में पम्पा सरोवर पर माल्यवान के अनुरोध से बाली राम को मारने के लिये खड़ा था। राम ने उसे एक ही बाण से मार डाला। सुग्रीव ने यह खबर शबरी से सुनी। माल्यवान को भी पता लग गया। बड़ा घबड़ाया। उसने लंका जलने की भी खबर सुनी। मन्दोदरी ने रावण को बहुत समझाया पर सब विफल। वानर सेना ने लंका घेर ली। अंगद का समझाना भी कुछ रंग न लाया। राम रावण का युद्ध शुरू हो गया। लक्ष्मण के शक्ति लगी और राजी भी हो गए। आखिर ब्रह्मास्त्र द्वारा राम, रावण पर विजयी हुए। राम ने सीता की अग्नि परीक्षा ली और फिर सीता लक्ष्मण तथा सुग्रीव आदि वानरों के साथ पुष्पक में बैठ कर अयोध्या में आए। बड़ा स्वागत हुआ। कैकेयी लज्जित थी। उसका समाधान अरुधन्ती ने किया। फिर राज्याभिषेक हुआ। पुष्पक कुबेर के पास भेज दिया। वानर अपने-अपने स्थान को चले गए।

हिन्दुओं की पुरानी पाचन शक्ति

(८)

वैदिक काल में आर्यों ने अनार्यों को हराया। उन पर अपना सिक्का जमाया। फलतः वह आर्यों में मिल गए। आज की द्राविड़ और ऐसी ही दूसरी जातियाँ आर्य और दस्युओं के मिश्रण से ही तो बनी हुई हैं।

भविष्य पुराण में लिखा है कि सरस्वती की आज्ञा से कण्व ऋषि मिश्र देश को गए। वहाँ धर्म-प्रचार किया और १०००० मिश्रियों को भारत में ले आये। उन में से २००० को वैश्य बनाया, कुछ को क्षत्रिय और एक को ब्राह्मण बनाया। बाकी शूद्रों में गिने गए। व्यासदेव मध्य-एशिया में गए थे। इसका पता पारसियों की धर्म-पुस्तक जिन्दावस्त से भी लगता है। जावा, सुमात्रा, बोर्नियो बाली और कम्बोडिया आदि में अभी तक हिन्दु संस्कृति के चिन्ह पाये जाते हैं। अमेरीका के मैक्सिको में अभी तक राम का उत्सव मनाया जाता है।

बौद्धों के जमाने में तो हद ही हो गई। चीन, जापान, तिब्बत और अफगानिस्तान आदि दर्जनों देश हिन्दु-जाति में मिल गये। भगवान बुद्ध के अनुयायी हो गए। ४०० वि० पू० भारत में आन्ध्रों का शासन था। वह दक्षिण के द्राविड़ थे, जो बाद में वैदिक धर्मी बन गए। सिकन्दर के बाद कई यूनानी भारत के पश्चिमी भाग में बस गए थे। मिलेण्डर आदि तीन

राजा भी उस में हुए, जिन्होंने यहां के राजाओं से विवाह सम्बन्ध जोड़ लिया। कायस्थ उन्हीं के वंशज कहे जाते हैं।

यूनानियों के बाद शकों ने राज्य किया। जो सिथियन थे। शकों का प्रतापी राजा शालिवाहन हुआ, जिसने शक सम्वत चलाया। शाक द्वीपी ब्राह्मण और क्षत्रिय शाक वंशीय ही हैं, जो हिन्दु-जाति में मिले हुए हैं। शकों के साथ बेबिलोनिया से पल्हव नाम की भी एक जाति आई थी। जो म्लेछ थी। उस जाति के भी तीन राजा हुए। कहां हैं वह पल्हव? मिल गए हिन्दु-जाति में। कुशान वंशी तिब्बत के उत्तर से आए थे। उनका कनिष्यक प्रसिद्ध राजा हुआ है। कुशानवंशी अब क्षत्रियों में गिने जाते हैं। पांचवी सदी में हूण मध्य एशिया से आए। बड़े खूंखार थे। उन्होंने तहलका मचा दिया। आखिर हर्ष ने उन्हें दबा दिया। उनके वंशज कलहंस क्षत्रिय कहलाते हैं। आठवीं सदी में भारत का बहुतसा भाग बौद्ध धर्मावलम्बी था। पर नाम मात्र को। शंकराचार्य ने सब को वैदिक धर्मावलम्बी बना लिया। जो न बने, उनको मरना या भागना पड़ा। शंकराचार्य के बाद और भी अनेक आचार्यों और सुधारकों ने कोशिश की। लाखों विदेशी और विधर्म हिन्दु-धर्म में मिल गए। बिजनौर जिले में जम्भ नाम के एक साधु के प्रयत्न से ४ लाख यवन हिन्दु-धर्म में मिल गए। वह सब बिशनोई कहलाते हैं।

सिकन्दर का भारत पर आक्रमण

(१)

योरप वाले सिकन्दर को संसार का प्रथम विजेता कहते हैं और एशिया पर अपनी पहिली विजय मानते हैं, लेकिन वह भूल जाते हैं ४८० ई० पू० में, यूनान पर ईरान के आर्य राजा जेरेक्स के हमले को और ४६६ ई० पू० में उसी देश के दूसरे आर्य राजा डायरेस प्रथम के हमले को, जिन्होंने एथेन्स तक में घुस कर खून की नदियां बहा दी थीं। नहीं याद आती उनको शापुर और नरसी आदि उन ईरानी राजाओं की, जिन्होंने रोम-साम्राज्य तक को परास्त कर—उसके कई सूबों को छीन लिया था।

बेशक ३२६ ई० पू० में सिकन्दर ने भारत पर हमला किया पर ऐसा करने का उसे साहस क्यों हुआ ? हमारे घर की फूट के कारण। यहां पंजाब और सिंध कई छोटे-छोटे राजाओं में बंटा हुआ था और उन में परस्पर मेल न था। बल्कि आपस में बड़ा भारी बैर था। एक राजा दूसरे को तबाह करने में दिन रात संलग्न रहता था। तक्षशिला के राजा आम्भी ने अपने शत्रुओं को तबाह करने का यही रास्ता सोचा कि सिकन्दर को बुलाया जाय। उसने सिकन्दर को बुला भेजा। सिकन्दर के आने पर उस ने उसकी बड़ी सहायता की। साथ ही उस जैसे देश द्रोही और भी कितनों ही राजाओं ने की। सिकन्दर बढ़ता-बढ़ता

जेहलम और चिनाव के बीच की धरती के विख्यात राजा पोरस तक पहुंचा। पोरस ऐसा नीच राजा न था, जो उसका स्वागत करता। उसने उसका डट कर मुकाबिला किया। इससे पहिले रास्ते के और भी कई छोटे-मोटे राजाओं ने सिकन्दर को हाथ दिखाए।

"अस्पियन" एक पहाड़ी जाति थी। "अरियान" लिखता है—सिकन्दर ने एक बड़ी सेना लेकर उस पर हमला किया। अस्पियानों ने बड़ी वीरता से मुकाबिला किया पर जब उनका सेनापति मारा गया तो वह अपना किला छोड़ कर चले गये।

मसग वालों के युद्ध का वर्णन भी कई पुराने यूनानी लेखकों ने किया है। मसग, शायद गोरी-नदी के पूर्व की ओर था। पहिले दिन ही मसग वासियों ने सिकन्दर के पांव उखाड़ दिये पर किस्मत ने उनका साथ न दिया। तीन दिन के घोर युद्ध के बाद उनका राजा मारा गया। लाचार उन्होंने सिकन्दर से सन्धि करली। सन्धि की शर्तों के अनुसार वह नगर से आठ मील दूर चले गये। सिकन्दर ने वहां भी उन्हें जा घेरा और उन पर हमला कर दिया पर वह घबड़ाये नहीं। बड़ी वीरता से लड़े। इस बार उनकी स्त्रियों ने भी बड़ी वीरता दिखाई पर भाग्य इस बार भी उनसे रूठा ही रहा।

बजीर, जो सिन्धु नदी के बीच में था, और जिसे अब वीरकोट कहते हैं—वहां के और "ओरनियस" जो सिन्धु नदी के पश्चिम में "परिसर" पहाड़ पर था—वहाँ के लोगों ने भी सिकन्दर का डट कर मुकाबिला किया पर किस्मत उनको भी मन्द ही रही। आखिर पोरस की बारी आई।

पोरस का असली नाम पुरू था। वह जेहलम और चिनाव के बीच की धरती का स्वामी था। उसके साथ सिकन्दर का जो युद्ध हुआ, उसका वर्णन "अरियान" "फरटियस डियोडोस" और "प्लूटार्क" वगैरः कितने ही पुराने यूनानी लेखकों ने किया है। सब वर्णन भिन्न-भिन्न होते हुए भी, इस बात में एक है कि पुरु बड़ी वीरता से लड़ा। जब तक उसका एक भी साथी काम करता रहा, वह मैदान में डटा रहा। वह घावों से छलनी-छलनी होकर भी जरा नहीं घबड़ाया। उसकी इस वीरता से प्रसन्न होकर और दूसरे कई कारणों से सिकन्दर ने उसका राज्य उसके पास ही रहने दिया। इस युद्ध में देशद्रोही आम्भी भी सिकन्दर के साथ था। पोरस की वीरता से जरूर वह घबड़ाया होगा और अपनी नीचता पर पछताया भी होगा।

पोरस से पीछा छुड़ा कर सिकन्दर आगे बढ़ा। उसका वास्ता मालवियों और क्षुद्रकों से पड़ा। उन्होंने भी सिकन्दर को नीचा दिखाया। इन्हीं लोगों के हाथ से उसकी छाती में एक बर्छा भी लगा, जिससे वह बेहोश हो गया और उस समय तो नहीं, पर आगे चलकर वही बर्छा उसकी मौत का कारण बना।

आखिर जब कहीं भी सिकन्दर के पैर न जमें और जहाँ भी जाए उसे मौत का ही सामना करना पड़े तो उसकी सेना में घबड़ाहट होनी शुरू हो गई और वही घबड़ाहट उसे भारत छोड़ने के लिए प्रधान कारण बनी। भारत छोड़ कर वह अपने घर बाबुल में पहुंचा और वहीं ३२३ ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गई।

अफगानिस्तान का इतिहास (१०)

यह एक छोटा सा मुल्क होता हुआ भी, अपनी कई-एक विशेषताओं के कारण बड़ी-बड़ी महा शक्तियों के आकर्षण का कारण बन रहा है। एक ओर तो अंग्रेज इसके चाहवान हैं और दूसरी ओर रूस। दोनों ही इसे खुश रखने की भरसक चेष्टा करते रहते हैं।

यह पहाड़ी प्रदेश है। भौगोलिक दृष्टि से भी इसका बड़ा महत्व है। कहीं ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हैं तो कहीं समतल भूमि है। कहीं दर्रे हैं तो कहीं खड्डे हैं। कहीं नदियें हैं तो कहीं नाले हैं। ऊंचे पहाड़ी इलाके में अत्यन्त सर्दी और नीचे के इलाके में अत्यन्त गर्मी पड़ती है। नाना प्रकारके खाद्य-पदार्थ पैदा होते हैं। काबुल, कन्धार और हिरात इसके बड़े-बड़े नगर हैं। काबुल राजधानी है। क्षेत्रफल २४५००० वर्ग मील है। कुल जन-संख्या करीब अस्सी लाख के है। गिलजई अफगान, यूसुफजई अफगान, हजारा अफगान, दुर्रानी अफगान और मोमन्द आदि कई किस्म के-कई वंशों के अफगान रहते हैं। हिन्दु भी रहते हैं। भाषा फ़ार्सी और पश्तो है। हिन्दु, हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाएंभी बोलते हैं। अंग्रेजी का प्रचार भी हो रहा है। काबुल में दो कालिज और एक युद्ध-विद्या शिक्षणालय भी है।

वैदिक-युग में अफगानिस्तान में वैदिक सभ्यता थी। सुलेमान पर्वत की उपत्यकाओं में रहकर ऋषि लोग जीवन के मूल तत्वों का अन्वेषण करते थे। सिकन्दर के समय भी अफगानिस्तान

सीस्तान, और बलोचिस्तान में आर्य-सभ्यता थी। मौर्य-राज्य के समय यह प्रदेश मगध-राज्य के आधीन था। काबुल, कन्धार और हिरात—यह तीन इलाके सिल्यूकस ने अपनी लड़की के साथ चन्द्रगुप्त मौर्य्य को दहेज में दिये थे। दसवीं सदी तक अफगानिस्तान में बौद्ध और जरथस्त्र वास करते थे। उस समय काबुल नदी को कुभा कहते थे। समय पाकर अफगानिस्तान मुस्लिम-शासन में आ गया। अनेक उथल-पुथल होते रहे। १७३८ में फारस वालों ने अधिकार कर लिया और अनेक दिन तक उसका सुखोपभोग करते रहे। १८२५ में अहमदशाह अबदालीके पोते शाहशुजा को एक अफगान सरदार दोस्त मुहम्मद ने गद्दी से उतार कर अफगानिस्तान पर कब्जा कर लिया। वह अंग्रेजों से मित्रता करना चाहता था, पर उस समय भारत के लार्ड आकलैण्ड ने कुछ ध्यान न दिया। दोस्त मुहम्मद ने रूस से दोस्ती गांठ ली। अंग्रेज घबड़ाए। उन्हों ने भारत में रह रहे शाहशुजा को आगे करके अफगानिस्तान पर हमला किया। लड़ाई हुई। दोस्त मुहम्मद भाग गया। शुजा काबिज हुआ। प्रजा शुजा को नहीं चाहती थी। उसने विद्रोह कर दिया। अंग्रेज सेना ने सन्धि करली। सन्धि करके वह लौट रही थी कि दर्रा खैबर में उस पर हमला हो गया। १६००० अंग्रेज मारे गए। १८७८ में अंग्रेजों ने अफगानिस्तान पर फिर हमला किया और ७६ में बिल्कुल जीत लिया, लेकिन शांति बहाल न कर सके। लड़ाई झगड़े होते रहे। १८८० में लार्ड रिपन ने शेरअली के भतीजे अबदुर्रहमान को अमीर स्वीकारकर लिया। मित्रता होगई। १६१६ में अमीर अमानुल्ला काबुल की गद्दी पर बैठा। अब फिर अंग्रेजों और अफगानों की लड़ाई हुई पर आखिर सन्धि हो गई। अमानुल्ला सुधारक था। अफगान उसके दुश्मन हो गए। वह भाग

गया। उसका भाई गद्दी पर बैठा। बचा सक्का नाम के एक डाकू ने उसे उतार कर खुद कब्जा कर लिया। अमानुल्ला के भूतपूर्व सेनापति नादिरशाह ने सक्का को कैद कर काबुल पर आप कब्जा कर लिया। शांति स्थापित हो गई। अब अफगानिस्तान स्वाभाविक परिवर्तनों के साथ-साथ उन्नति कर रहा है।

सिख-राज्य के पतन का इतिहास

(एक तत्कालीन पंजाबी-कवि के कथनानुसार)

(११)

महाराजा रणजीतसिंह के बाद, उनका ज्येष्ठ-पुत्र खड्गसिंह गद्दी पर बैठा। उसका एक मित्र था, चेतसिंह। दरबारियों ने बिला वजह कुंवर नौनिहालसिंह के हाथों उसे मरवा डाला। खड्गसिंह को इस का बड़ा दुःख हुआ। वह मित्र के वियोग में एक वर्ष तक बीमार रह कर आखिर चल बसा। कुंवर नौनिहालसिंह भी एक षड़यन्त्र के परिणाम स्वरूप उसी दिन मर गया। खड्गसिंह का भाई शेरसिंह बटाला में रहता था। वह जल्दी २ लाहौर आया। उसे प्रधान मन्त्री राजा ध्यानसिंह ने पहिले तो वापिस कर दिया परन्तु फिर बुला कर गद्दी पर बैठा दिया।

इस बीच में रणजीतसिंह की रानी चन्दकौर राज्य करती रही। अब शेरसिंह ने उसे कैद कर लिया और फिर मरवा डाला। समय पाकर संधावालिये सर्दार अजीतसिंह ने शेरसिंह को गोली से मार डाला। लहिणासिंह, अजीतसिंह का चचा था। वह रिश्ते में शेरसिंह का भी चचा था, उसने शेरसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को मार डाला। फिर सब संधावालिये सरदार नगर में आए। आते ही उन्होंने राजा ध्यानसिंह को मरवा डाला और इसके खून से कुंवर दलीपसिंह को अभिषेक कर दिया। ध्यानसिंह का मरना सुन कर उसका पुत्र हीरासिंह लाहौर पर चढ़ आया। उसने सन्धावालिये सरदारों को मार भगाया और दिलीपसिंह के नाम पर खुद राज्य करने लगा। उसने जल्लाह पण्डित को अपना मन्त्री बनाया। सिख उसे नहीं चाहते थे। उन्होंने ध्यान-सिंह के भाई सुचेतसिंह को बुला भेजा। उसने हीरासिंह से युद्ध करके उसे मार डाला। सिक्खों ने जल्लाह को मार डाला और सुचेतसिंह को बहका कर भगा दिया। सिक्खों ने और भी कई सरदारों को मारा। बड़ा ऊधम करने लगे। उन्होंने पंजाब केसरी की विधवा महाराणी जिंदाँ के भाई जवाहरसिंह को भी उसके साम्हने कत्ल कर डाला और खुद जिंदां को भी कैद करके तंग करने लगे। कहने लगे, इनाम दे हमें। हमारे ही सिर पर तू राज्य कर रही है। जिंदां बहुत घबड़ाई। कोई चारा न देख कर उनका दमन करने के लिये और अपने भाई का बदला लेने के लिये उसने अंग्रेजों को बुला भेजा और इधर सिक्खों को उन्हें लूटने के लिये उकसा दिया। मतलब उसका अंग्रेजों के हाथों उनके दाँत खट्टे करने का था। यह बात उसने अंग्रेजों को लिख भी दी थी। मुदकी के स्थान पर सिक्खों और अंग्रेजों

में बड़ा भारी युद्ध हुआ। सिक्खों ने बड़ी वीरता दिखाई। अंग्रेज भागना ही चाहते थे कि घर की फूट ने सिक्खों का नाश कर दिया। अंग्रेज जीत गये। उनके हाथ १२३ तोपें और बहुत सा सामान आया। दूसरी बार फिर युद्ध मचा। इस बार सिक्ख नहीं लड़ना चाहते थे, पर लड़े। तेजासिंह उनका नेता था। इस बार भी सिक्खों ने बड़ी बहादुरी दिखाई पर भाग्यने उनका साथ न दिया। सेनापतियों ने उनसे दगे पर दगा किया। सिक्ख हार गए। जिंदा ने अंग्रेजों का धन्यवाद किया। अंग्रेज लाहौर में दाखिल हुए। रानी जिंदां के पक्षपाती सर्दारों ने उनका स्वागत किया। अंग्रेजों ने लाहौर में छावनी बनाली और जिंदां के रक्षक बन बैठे। तब सिक्खों को होश आई।

भारत में आतंकवाद का आरम्भ

(१२)

राऊलेट कमेटी के मतानुसार इसका आरम्भ "चितपावन" जाति के महाराष्ट्र ब्राह्मणों द्वारा हुआ, क्यों कि उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में जब अंग्रेजों ने महाराष्ट्र-राज्यघराने को उखाड़ा तो वास्तविक धक्का इसी जाति को लगा। इस जाति के दिल में अपनी पुरानी धाक और अतीत के वैभव को पुन: लाने की उत्कट अभिलाषा थी। उसी कमेटी के कथनानुसार इस बात का आधार साम्प्रदायिक भावना भी था। लिखा है—सन् १८९३ में बम्बई में हिन्दु-मुस्लिम दंगा हुआ। उसके बाद हिन्दुओं ने सार्वजानिक गणपति मेले की नींव रक्खी और ऐसी योजना बनाई कि जिस से सरकार के और मुसलमानों के विरुद्ध जोश फैले। साथ ही शिवा जी का जन्म दिन और राज्याभिषेक दिन भी मनाना शुरू किया। सन् १८९५ में पहिली बार शिवाजी का राज्याभिषेक दिन मनाया गया। उन्हीं दिनों पूना में चितपावन ब्राह्मण दामोदर और बालकृष्ण चापेकर ने हिन्दु-धर्म संरक्षिणी सभा की बुनियाद रक्खी। सन् १८९७ में बड़े जोरों से प्लेग फैली। ४ मई को चितपावन-ब्राह्मण श्री बालगंगाधर तिलक ने अपने पत्र केसरी में प्लेग कमिश्नर मि० रैण्ड को अत्याचारी होने का दोष लगाया और सरकार को भी उसका समर्थक कहा। २२ जून को चापेकर भाईयों ने मि० रैण्ड को और मि० एयर्स्ट को कत्ल कर डाला। निसंदेह एयर्स्ट का कत्ल संयोग से हुआ।

जानकर नहीं। फलतः हत्यारों को भी सजा मिली और तिलक महाराज को भी। पूना के ब्रिटिश-विरोधी पत्रों के कटाक्ष फिर भी जारी रहे। १८६८ में चितपावन-ब्राह्मण महादेव परांजपे ने पूना से एक साप्ताहिक मराठी-पत्र निकाला। उसके विद्रोह-पूर्ण लेखों के कारण पहले परांजपे को चितावनी दी गई और फिर आगे चल कर १६०८ में १६ मासका कारावास दण्ड दिया गया। 'विहारी' नाम का एक और पत्र भी था। उसेभी पूना के चितपावन ब्राह्मण ही निकालते थे। सन् १६०६-७ और ८ में लगातार उसके तीन सम्पादक दण्डित किए गए। काठियावड़ रियासत के एक धनीं आदमी थे, श्याम जी कृष्ण वर्मा। वह बम्बई से लण्डन चले गए। वहां कुछ समय चुप रहने के बाद उन्होंने एक भारत-स्वराज्य-सभा कायम की। उसकी एक मुख पत्रिका भी निकाली। फिर एक और पत्र भी निकाला। योग्य भारतियों को विदेश भ्रमण कराके, उन के द्वारा भारत में स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता की लहर चलाने के लिये उन्होंने कुछ वजीफे भी मुकर्र किये और इस प्रकार लण्डन में अपने आदमी जमा कर लिये। उन में एक विनायक दामोर सावरकर भी थे। वह भी चितपावन ब्राह्मण थे और बी० ए० पास थे। वह नासिक में राजनीतिक कार्य करते थे। उनके लण्डन चले जाने के बाद भी काम बका-यदा जारी रहा और उन के बड़े भाई गणेश दामोदर काम करते रहे। १६०७ में कृष्ण वर्मा पेरिस चले गए और वहाँ भी अपना काम बाकायदा करते रहे। लण्डन का भारतीय-भवन भी चलता रहा। ३० अप्रेल १६०८ को बंगाल में मि० किंग्सफर्ड के धोखे में मिसेज और मिस कैनेडी को एक बंगाली युवक खुदीराम ने बम चला कर मार डाला। इसी वर्ष भारतीय भवन में सिपाही

विद्रोह का स्मृति-दिवस मनाया गया। १९०९ में भवन के नेता मि० सावरकर थे। उस समय वहां साप्ताहिक सत्संग होता था। ५७ के गदर सम्बन्धी सावरकर की एक पुस्तक पढ़ी जाती थी। उसी साल भवन के एक सदस्य अमृतसर के मदनलाल ढींगरा ने सर कर्जन वाइली को मार डाला। इससे पहले नासिक में गणेशदामोदर को द्वीपान्तर वास का दण्ड मिल चुका था। गणेश का मुकद्दमा तय करने वाले थे, नासिकके कलेक्टर मि० जैक्सन। २२ दिसम्बर १९०८ को औरंगाबाद के एक ब्राह्मण ने विनायक की भेजी हुई पिस्तौल से उनका काम तमाम कर डाला। इस अभियोग में सात चित्तपावन ब्राह्मणों पर मुकद्दमा चला, जिन में से तीन को फाँसी लगी। नासिक षड्यन्त्र में ३८ अभियुक्तों में ३७ ब्राह्मण थे और अधिकतर चित्तपावन ही थे। उनमें से ३७ को कारावास का दण्ड मिला। इसके बाद और भी कई षड्यन्त्र और उपद्रवकारी काम हुए, जिन में मुख्य भाग चित्तपावन ब्राह्मणों का ही था।

संसार में सिक्कों का चलन (१३)

अनुमान लगाया गया है कि संसार में अब तक १ लाख ३० हजार तरह के सिक्के प्रचलित रहे हैं। कोई हैट जैसी शक्ल का तो कोई फावडे जैसा, कोई घोड़ेकी जीन जैसा तो कोई चीते की जीभ जैसा। अमेरिका के एक सिक्का-संग्रह करने वाले के पास एक ऐसा सिक्का है, जो संसार में सब से बड़ा है। वह ताँबे का है और उसका वजन ४५ सेर के लगभग है। कहते हैं कि वह अमेरिका के उत्तरी देशों में १०० वर्ष पूर्व प्रचलित था।

सिक्कों का चलन—

बर्मा में सिक्कों के रूप में चाय चलती थी। रूस में रोटी, चीन में मट्ठा और दक्षिणी-समुद्र के बेनीकोरो द्वीप में पक्षियों के पंख। अमेरिका में १७वीं सदी तक कौडियों के सिक्के चलते थे। दक्षिणी-समुद्र में याप नामी द्वीप में युगों तक पत्थरों के रोडे, सिक्कों के रूप में इस्तेमाल होते रहे। ३० इंच की परिधि और ८२ सेर वजन की यह पाषाण मुद्रा एक सुन्दर से सुन्दर रमणी ख़रीद सकती थी। फीजी-द्वीप में ह्वेल मछली के दांतों के सिक्के चलते थे। दक्षिणी-अफ्रीकामें हाथी के बालों के रूप में सिक्के चलते थे। मलाया प्राय-द्वीप के मलक्का में सिक्कों को एक वृक्ष के रूप में बनाया जाता था। सेब की भाँति के एक दर्जन सिक्के एक वृक्ष में रहते थे। जरूरत के मुताबिक उस में से उतार लिए जाते थे। कुर्दिस्तान में सिक्के चांदी की पतली तारों के होते थे। एक समय वहाँ गोंद की बून्दों से सिक्कों का काम लिया

जाता था। उससे बहुत समय पहले वहाँ मिश्री के टुकड़ों के सिक्के चलते थे। साईबेरिया में भारी से भारी और हल्के से हल्के सिक्के चलते थे। सुदूर-उत्तर में याकूत के कबीले वाले तांबे का फाक्समनी प्रयोग करते थे। यहीं पर कागज की तरह पतले चाँदी के सिक्के भी होते थे, जो जरासी हवा में हाथ से उड़ जाते थे। पैसिफिक-समुद्र के दक्षिण-पश्चिम की ओर कैनीबड आइलस है, वहाँ सिक्कों के नाप वजन से नहीं, गजों से होते थे।

भारत में पहले द्रव्य विनिमय द्वारा ही व्योपार होता था। राज्य की ओर से भी आम-तौर पर वेतन के रूप में अनाज ही मिला करता था। राजा खुद भी भूमिकर के रूप में अनाज ही लेता था, इसलिये सिक्के आम तौर पर थोड़े ही बनते थे। न तो उनपर कोई लेख होता था, न राजा का नाम। बहुधा चांदी, सोने और तांबे के सिक्के बनते थे। उनका वजन जरूर मुकर्रर होता था। लेख वाले सिक्के, ईस्वी सन् से तीन सौ वर्ष पहले के मिलते हैं। जो मालव जाति के हैं। गुप्त राजाओं ने सिक्कों की ओर विशेष ध्यान दिया। उनके सोने के सिक्के गोल और लेख वाले मिलते हैं। कविता-बद्ध लेख वाले भी मिलते हैं। और भी कई प्रकार के मिलते हैं। हूणों ने ईरान का खजाना लूट कर जो चाँदी के सिक्के यहाँ लाए थे उनकी नकल बिगड़ती बिगड़ती ऐसी हो गई कि उस पर राजा के चेहरे का निशान गधे के खुर जैसा प्रतीत होने लग गया, जिससे उन सिक्कों का नाम ही गधिया पड़ गया। मुसलमानों ने पहले अजमेर के हिंदू सिक्कों की नकल की। फिर अपने स्वतन्त्र सिक्के बनाने शुरू किये।

तिब्बत के पुराने रीति-रिवाज

(१४)

सुप्रसिद्ध जापानी यात्री इकाई कावा गुची बड़ी हिम्मत कर के तिब्बत गया था और तीन वर्ष तक वहां रहा था। यह बात आज से ४२-४३ वर्ष पहिले की है। उसने जो-जो रीति-रिवाज वहां के देखे, अपने यात्रा-विवरण में लिख दिए। कौन कह सकता है कि वह झूठ है और वहां नहीं हैं। कुछ का वर्णन इस प्रकार है—

(१) तिब्बत में एक स्वामी की कई स्त्रियां न होकर एक स्त्री के कई स्वामी भी होते हैं और सभी रुपया कमा कर स्त्री के हाथ देते हैं। जो नहीं कमाता, या कम कमाता है उसे स्त्री सजा देती है। यह बहु-पतित्व की रीति तब से वहां प्रचलित है, जब वहाँ बौन-धर्म था, अब बौद्ध-धर्म है।

(२) तिब्बत में अपराधियों को सजा सर्व-साधारण के सामने दी जाती है। सजा कई प्रकार की होती है। कोड़ों की गिनती तीन सौ से, सात सौ तक नियत है। एक कैदी का वर्णन करते हुए कावागुची लिखता है—जिस कोठड़ी में कैदी को रक्खा गया था, उसकी छत में ही एक छिद्र था। उसी में से कैदी को भोजन पहुंचाया जाता था। कभी बाहर भी निकाला जाता था। तब उसके साथ बड़ी सख्ती होती थी। उसके नाखूनों में बांस की पचरियां ठोंकी जाती थीं। जब पचरें ठोंकते-ठोंकते

नाखून निकल जाता था तो उसके चमड़े और माँस में डंडियां ठोंकते थे। एक बार एक ही अंगुल की इस तरह दुर्गति की जाती थी। आखिर एक-एक करके सबका यही हाल होता था। एक सुन्दर स्त्री को भी काठ मारे हुए उसने देखा। कोड़ों की सजा और फिर देश निकाले का दण्ड भी उसी अभागिन को मिला। मालूम हुआ, अपराधी के सिर पर शिलाओं का बोझ रक्खा जाता है। इतना बोझ कि उसकी आंखें तक बाहर निकल आती हैं। जिस कोड़े से अपराधी को पीटा जाता है, वह 'विलो' वृक्ष की हरी लकड़ी होती है। शरीर में घुस जाती है। रह-रह कर और मुंह में पानी डाल-डाल कर बेंत मारते हैं। आँखें निकाल लेना, हाथ काट लेना और नाक-कान काट लेना भी प्रचलित है। सब से बड़ा मृत्यु-दण्ड पानी में डुबो कर मारना है। उसके भी दो तरीके हैं। एक पत्थर से बाँध कर पानी में लटका देना और दूसरा मश्क में बांध कर पानी में डाल देना। जब वह मर जाता है तो उसके टुकड़े २ कर दिए जाते हैं। सब टुकड़े पानी में फेंक दिए जाते हैं, केवल सिर रख लिया जाता है। वह उसे ७ दिन तक लोगों को दिखा कर एक मकान में रख देते हैं।

(३) मृत-शरीर की अन्त्येष्टि-क्रिया, मरने के तीन-चार दिन बाद होती है। उस की चार विधि हैं। मृत-शरीर को पानी में बहाना, अग्नि में जलाना, धरती में दफनाना और पक्षियों को खिलाना। चाहे कोई जिस तरह करे, पर अच्छी रीति चौथी ही समझी जाती है। यह चेचक के रोग से मरे की नहीं होती। शव को काट-काट कर पक्षियों को खिलाया जाता है। नदी में बहाने से पहले भी उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाता है।

पक्षियों को खिलाने के समय हड्डियों से मांस जुदा कर दिया जाता है और हड्डियों को भी पीस कर आटे में मिला कर पक्षियों को खिला दिया जाता है।

(४) कोई चार सौ वर्ष हुए, गैंदनतूब नाम का एक पुरोहित था। वह पहला दलाई-लामा हुआ था। मरने के समय वह कह गया कि अमुक स्थान पर, अमुक घर में मैं जन्म लूंगा। कहते हैं कि ठीक ऐसा ही हुआ। तब से ठीक ऐसा होता है या नहीं यह तो अब धीरे-धीरे समझा जारहा है पर बना दिया जाता है, ऐसा जरूर। एक दलाई-लामा के मरने के बाद दूसरा दलाई-लामा खोजा जाता है। खोजा हुआ दलाईलामा बच्चा होता है। उस का राज्याभिषेक भी बड़ी धूम-धाम से किया जाता है। अभिषेक की खुशी में सींग-पूंछ सहित एक साबत बहल भी पकाया जाता है।

भारत-भूगोल (१५)

जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, उसके सर्वांग वर्णन को भूगोल-वर्णन कहते हैं। यह वर्णन पांच भागों में बाँटा जा सकता है—खगोल, गणित, प्राकृतिक राजनीतिक और व्यापारिक। पृथ्वी का आकार नारंगी की तरह का है। उसके उत्तरीय और दक्षिणी सिरे, जो ध्रुव कहलाते हैं, कुछ चिपटे से हैं। यह उन्नीस करोड़ पैंसठ लाख वर्ग मील की पृथ्वी, जिसकी परिधि पच्चीस हजार मील और व्यास छहत्तर सौ मील है, सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ग्रहों में से एक है। सूर्य के चारों ओर घूमने वाले मुख्य ग्रह आठ और उपग्रह २०० हैं। चन्द्रमा भी एक उपग्रह है। पृथ्वी की चाल ६६ हजार मील प्रति घंटा है। हमारा भारत, पृथ्वी पर एशिया के दक्षिण में त्रिभुजाकार है। इसकी लंबाई, उत्तर से दक्षिण तक, सोलह सौ मील और चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक १८ सौ मील है। इसका क्षेत्र फल १८ लाख वर्ग मील है। इसके उत्तर में हिमालय के पहाड़, पूर्व में चीन-ब्रह्मा की पहाड़ियां और बंगाल की खाड़ी, दक्षिण में हिन्द-महासागर और पश्चिम में अरब-सागर, अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान हैं। १९४१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इसकी जन संख्या ३७॥ करोड़ है। इसकी नदियों को दो भागों में बाँटा गया है। उत्तर-भारत की नदियां और दक्षिण-भारत की नदियां। गंगा, सिन्ध, और ब्रह्म-पुत्र उत्तर भारत की नदियां और गोदावरी, कृष्ण-कावेरी महा नदी नर्मदा और ताप्ती, दक्षिण-भारत की नदियां हैं। इंग्लैंड के सम्राट अपने प्रतिनिधि वायसराय द्वारा यहां शासन करते हैं।

नेपाल और भूटान स्वतन्त्र हैं। कुछ नगर फ्रांस के और कुछ पुर्तगाल के भी हैं। लंका और स्ट्रेटस-सैटलमैंट-उपनिवेश भी सरकार के आधीन हैं। ब्रिटिश-भारत और देसी-राज्य, दो इसके बड़े भाग हैं। ब्रिटिश-भारत १२ प्रान्तों और ६ चीफ कमिश्नरियों में बँटा हुआ है। यहाँ हर प्रकार की आबोहवा पाई जाती है। ३१८ से ऊपर यहाँ भाषाएँ बोली जाती हैं। हिन्दू, मुसलमान और इसाई आदि कई जातियां यहां रहती हैं। ६० प्रतिशत लोग यहाँ खेती-बाड़ी पर गुजारा करते हैं। चावल, मकई, बाजरा, गेहूं, कपास, ईख, अफीम, तमाखू, नील और पाट आदि यहां की मुख्य पैदावार हैं। कोयला, लोहा, सोना, चाँदी, हीरा, अभरक, ताम्बा, टीन पेट्रोल और नमक आदि यहां के खनिज पदार्थ हैं। बाहर से भी यहाँ अनेक चीजें आती हैं। १४ के करीब यहाँ पर रेलवे कम्पनियाँ हैं। १८५० से पहले यहाँ कोई रेलवे लाईन न थी। भारत-वर्ष की प्रधान सड़कों की लम्बाई २० लाख मील से भी ज्यादा है। भारत से बाहर जाने के लिय कुछ दर्रे भी बने हुए हैं। समुद्र का मार्ग प्रधान है। पश्चिम को जाने के लिये नहर स्वेज को पार करना होता है। पूर्व को जाने वाले जहाजों को मलाका जल-डमरू में से होकर जाना पड़ता है। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कराची, गोआ रंगून भारत की मुख्य बंदरगाहें हैं। बर्मा अब भारत से पृथक समझा जाता है। भारत के सभी बड़े-बड़े नगरों और गावों में डाकखाने हैं। तारों का भी जाल बिछा हुआ है। कला-कौशल भी यहाँ खूब हैं। सैंकड़ों मिलें भी चल रही हैं। वर्तमान शासन चार भागों में बंटा हुआ है। देश हर प्रकार से खुशहाल है फिर भी भूखों मर रहा है।

विश्व-भूगोल की बातें (१६)

पृथ्वी की सतह दो वस्तुओं से बनी है—जल से और थल से। पृथ्वी की सतह का ³⁄₄ भाग जल और ¹⁄₄ भाग थल है। स्थल भाग का क्षेत्रफल पाँच करोड़ बीस लाख वर्ग-मील है और जल भाग का लग भग चौदह करोड़ पचास लाख वर्ग-मील है। जन-संख्या १ अरब ७५ करोड़ के करीब है। बड़े-बड़े महाद्वीप छः हैं—एशिया, योरोप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, उत्तरी अमेरीका और दक्षिणी अमेरीका। इन में तीन मुख्य जातियाँ हैं—आर्य जाति, मंगोल जाति और हब्शी या नीग्रो जाति। योरप के दक्षिण-पश्चिम एशिया के और उत्तरी अफ्रीका के रहने वाले आर्य-जाति के हैं। पूर्व के और उत्तर-पूर्व ऐशिया के, उत्तर योरप के और उत्तर महासागर के किनारे-किनारे रहने वाले मंगोल जाति के हैं और दक्षिण एवं मध्य अफ्रीका के रहने वाले नीग्रो या हब्शी जाति के हैं।

एशिया—यह सबसे बड़ा महाद्वीप है। इसका क्षेत्रफल १ करोड़ ७० लाख वर्ग-मील है। इसमें ६१ करोड़ की आबादी है। संसार के बड़े-बड़े धर्माचार्य इसी में हुए हैं। गौतम बुद्ध, ईसामसीह, मुहम्मद साहब, शंकराचार्य, और स्वामी दयानन्द आदि। इस महाद्वीप के उत्तर में उत्तरी महासागर, पूर्व में प्रशाँत महासागर, दक्षिण में हिन्द-महासागर और पश्चिम में लाल सागर, भूमध्य-सागर, काला-सागर, यूराल नदी पहाड़ और योरोप है। इसका तट बहुत कटा फटा नहीं है, इसलिए इस पर

अच्छी बन्दरगाहें कम हैं। हमारा भारतवर्ष इसी महाद्वीपके दक्षिण में है, जिसका क्षेत्रफल १८ लाख वर्ग मील है। लम्बाई जिसकी उत्तर से दक्षिण तक ६०० मील और चौड़ाई १८०० मील है। जन संख्या ३७॥ करोड़ से ज्यादा है। इसके इलावा, चीन, जापान आदि एक दर्जन से ज्यादा और भी कई देश इसी महाद्वीप में हैं। जापान एक महान् शक्तिशाली देश है, यद्यपि एक पहाड़ी इलाका है और ज्वाला मुखियों से भरा पड़ा है।

योरोप—इसके उत्तर में उत्तरीय महासागर, पूर्व में कास्पियन-सागर, यूराल पहाड़, यूराल नदी, दक्षिण में काकेशस पहाड़, काला-सागर और भूमध्य-सागर, एवं पश्चिम में एटलाँटिक महा सागर है। क्षेत्रफल ४० लाख वर्ग मील और जन संख्या ४० करोड़ के करीब। कई देश हैं।

अफ्रीका—इसके उत्तर में भूमध्य-सागर, पूर्व में स्वेज नहर, लाल-सागर और हिन्द-महासागर-पश्चिम में एटलाँटिक महासागर और दक्षिण में उत्तमाशा द्वीप है। क्षेत्रफल १ करोड़ २० लाख वर्ग-मील और आबादी २० करोड़ के लगभग है।

आस्ट्रेलिया—इसका क्षेत्रफल ३० लाख वर्ग-मील है और जन संख्या ५० लाख के करीब है।

उत्तरी-अमरीका—उत्तर में उत्तरीय-महासागर, पूर्व में एटलांटिक महासागर और मैक्सिको की खाड़ी, पश्चिम में प्रशान्त महासागर और दक्षिण में पनामा जल डमरू-मध्य है। क्षेत्रफल १० लाख वर्ग मील और जन-संख्या १२ करोड़ है। यू०एस० ए० इसी में है।

दक्षिणी-अमरीका—इस में १२ के करीब देश हैं। इसके उत्तर में कैस्पियन-सागर और एटलांटिक महासागर, पूर्व में दक्षिण-एटलाँटिक महासागर, दक्षिण में हार्न-अन्तरीप और पश्चिम में प्रशान्त-महासागर हैं। क्षेत्रफल ७० लाख वर्ग-मील और जन-संख्या ३॥। करोड़ के करीब है।

पुराणों का परिचय (१७)

जिस में पूर्वकाल की परम्परा कही हो, उसे पुराण कहते हैं। पुराण के पाँच लक्षण कहे गये हैं—सर्ग, प्रति-सर्ग, वंश, मन्वंतर और वंशानुचरित्र।

जिस प्रकार आदि काल में एक अविभक्त वेद था, उसी प्रकार एक अविभक्त, परन्तु समय-समय पर परिवर्तित पुराण भी एक था। उसी से व्यासजी ने पुराण-संहिता या मूल पुराण रचे। विक्रम से पूर्व यह प्रायः बारह-बारह हजार श्लोकों के थे, लेकिन अब इनकी संख्या बहुत बढ़ गई है। पुराण सूचियों के अनुसार इस प्रकार है—

ब्रह्म १००००, पद्म ५५०००, विष्णु २३०००, वायु २४०००, भागवत १८०००, नारद २५०००, मार्कण्डेय ६०००, अग्नि १५४००, भविष्य १४५००, ब्रह्मवैवर्त १८०००, लिंग ११०००, बराह २४०००, स्कन्द ८११००, वामन १००००, कूर्म १७०००,

मत्स्य १४०००, गरुड़ १६०००, ब्राह्माण्ड १२०००। कुल चार लाख। प्रचलित ब्राह्मण पुराण में १३७०० से कुछ अधिक श्लोक मिलते हैं। इसमें महात्म्य और तीर्थ-वर्णन नया मालूम होता है। एक आदि ब्रह्म-पुराण मिलता है। उस में केवल ८००० श्लोक हैं। पद्म पुराण में ४८४५२ श्लोक मिलते हैं पर इस में स्वर्ग खण्ड या क्रियायोग-सार मिला देने से ५५००० की संख्या पहुंच जाती है। इसमें रामकथा, रघुवंश की कथा से मिलती है। विष्णु-पुराण में प्रथम भाग के छः अंश और लगभग ७००० श्लोक हैं। आज कल विष्णु-पुराण या विष्णु धर्मोत्तर दो जुदा जुदा ग्रन्थ समझे जाते हैं पर नारद-पुराण की सूचि के समय यह दोनों एक ही ग्रन्थ के भाग थे। दोनों की श्लोक संख्या १६००० होती हैं। वायू-पुराण को शिव-पुराण भी कहते हैं। इस का आधुनिक रूप ६०० ई० के लग-भग का है। इसके चार पर्व कहे गए हैं, लेकिन चारपर्व वाला वायू-पुराण आज कहीं नहीं मिलता। श्री मद्भागवत के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। नारद और पद्म के मत से, विष्णु-भागवत और मत्स्यादि ग्रन्थों के मत से देवी भागवत ही महा-पुराण माना जाता है। देवी-भागवत में राधा का महात्म्य है पर श्री मद्भागवत में राधा का नाम नहीं है। स्कन्ध और श्लोक संख्या दोनों की बराबर कही है। १२ स्कन्ध और २४००० श्लोक। कहते हैं, असल भागवत का बौद्ध-काल में लोप हो गया। फिर-हिन्दु धर्म के उत्थान-काल में वैष्णव और शाक्त लोगों ने भागवत के लक्षण या श्लोक संख्या लेकर इन दोनों ग्रन्थों को रचा। नारद पुराण २३००० लोकों का मिलता है। इसका आधुनिक रूप ११वीं शताब्दी के पूर्व का है। इसका मूल प्राचीन-अंश बहुत-कुछ छूट गया है। इसी प्रकार अन्य पुराणों का हाल है। कुल १८ पुराणों में दस शैव, चार वैष्णव,

दो ब्रह्मा के, एक अग्नि का और एक सूर्य का है । विष्णु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड और पद्म में एक ही कथा, एक ही विषय है और विशेष-विशेष भागों में श्लोक-श्लोक का मेल खाता है । पारगिटर साहब के मतानुसार पुराण पहले खरोष्ठी-लिपि में लिखे हुए थे । पुराणों में समय-समय पर क्षेपक मिलते रहे हैं । उन्हें रोकने के लिये प्रयत्न किया गया पर फल कुछ न निकला । रोग बढ़ता ही गया । अब रुका हुआ है ।

रामायण की कथा (१८)

पृथ्वी का भार उतारने को, ब्रह्मा की प्रार्थना पर आकाश वाणी हुई कि अंशों सहित हम राजा दशरथ के घर अवतार धारण करेंगे । राजा दशरथ, पूर्व जन्म में कश्यप थे । उनकी बड़ी रानी कौशल्या, अदिती थी । कश्यप और अदिती ने भगवान को पुत्र-रूप में पाने का वर ले रक्खा था । दशरथ की और भी दो रानियाँ थीं—सुमित्रा और कैकयी । राजधानी, सरयू-नदी के किनारे अयोध्या थी । १२ योजन लम्बी और ३ योजन चौड़ी । उसके इर्द-गिर्द एक बहुत पक्की दीवार थी । जिस पर बड़ी-बड़ी तोपें सदा धरी रहती थीं । अयोध्या, एक बहुत सुन्दर नगर था । प्रजा हर प्रकार से प्रसन्न थी । राजा भी बड़ा सुखी था, पर उसके घर में कोई सन्तान न होने से, उदास और दुखी रहता था । मन्त्रियों की सलाह से अपने भाई के जमाता, ऋष्य-शृङ्ग द्वारा

उसने पुत्रेष्टि यज्ञ रचा। यज्ञ के प्रभाव से राजा के घर में चार पुत्र पैदा हुए। बड़ी तथा मंझली से एक-एक और छोटी से दो। राम, भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न। यही चारों, अंशों सहित भगवान थे। एक बार विश्वामित्र राजा दशरथ के यहां आया और अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को ले गया। यज्ञ में बाधक थे—ताड़का, सुबाहु और मारीच। रामने उन्हें उचित शिक्षा देकर यज्ञकी रक्षा की। इतने में विश्वामित्र को राजा जनक के यहाँ स्वयंवर होने की खबर मिली। वह राम, लक्ष्मण को लेकर वहाँ चले गए। रास्ते में राम ने अहल्या का उद्धार किया। जिस धनुष पर कोई राजा चिल्ला न चढ़ा सका, राम ने उस पर सहसा ही चिल्ला चढ़ा दिया। चढ़ाते ही धनुष टूट गया। सीता ने राम को जयमाला पहिना दी। अयोध्या में खबर भेजी गई। खूब सज धज कर बरात आई। राम को सीता, लक्ष्मण को उर्मिला, भरत को माण्डवी और शत्रुघ्न को श्रुतकिर्ति विवाह दी गई। पहली दो जनक की और पिछली दो उनके भाई कुशध्वज की कन्याएँ थीं। जब परशुराम को धनुष-भंग का पता लगा तो वह बड़े गुस्से में आए, पर रामने उन्हें शांत कर दिया।

पुत्रों और पुत्र वधुओं को लेकर दशरथ अयोध्या में आए और बड़े आनन्द से रहने लगे। एक दिन दशरथ ने राम को युवराज-पद देना स्वीकार किया, पर मन्थरा दासी के बहकाने से केकयी ने भरत को युवराज-पद और राम को १४ वर्षका वनवास यह वर माँग लिए। फलतः राम बनको चले गये। साथ में सीता और लक्ष्मण भी। दशरथ ने पुत्र-वियोग में प्राण-त्याग दिए। भरत और शत्रुघ्न ननिहाल में थे। वह आये और बड़े दुःखी हुए। भरत, राम को लौटा लाने के लिये चित्रकूट गये पर राम

न लौटे। भरत उनकी पादुका लेकर लौट आए। राम, सीता और लक्ष्मण को लेकर बन-बन घूमते हुए पंचवटी में पहुंचे। वहां रावण की बहिन शूर्पनखा ने बहुत नीचता दिखाई। फलत: राम के इशारे से लक्ष्मण ने उसका नाक कान काट लिया। वह रोती हुई खरदूषणके पास पहुंची। खर १४ हजार सेना लेकर राम पर चढ़ आया। राम ने सब को मार डाला। शूर्पनखा रावण के पास गई। वह मारीच की सहायता से सीता को हर लाया। जटायु ने राम को सब हाल बतलाया। शबरी ने उन्हें पंपासर में सुग्रीव से मिलने की सलाह दी। राम, हनुमान की सिफारिश पर पर सुग्रीव से मिले। सुग्रीव ने राम द्वारा अपने भाई बाली को मरवा कर, सीता-प्राप्ति का काम शुरू किया। हनुमान, समुद्र पार कर लंका जला आए और सीता की खबर ले आए। बिभीषण राम से आ मिला। राम ने समुद्र पर पुल बाँध कर सेना पार की। युद्ध शुरू हुआ। लक्ष्मण ने मेघनाद को मारा। राम ने कुम्भकर्ण को और रावण को। ससैन्य राम ने राक्षस दल का खूब संहार किया। बिभीषण द्वारा सीता, राम के पास लाई गई। राम ने उसको अग्नि-परीक्षा करके स्वीकार किया और अयोध्या में आए। वहाँ नियमानुसार राज्याभिषेक हुआ। समय पर सब अपने २ धाम को चले गए।

महा-भारत की कथा (१६)

दुष्यन्त का पुत्र भरत और भरत का पुत्र शान्तनु। शान्तनु, सत्यवती नाम की एक केवट-कन्या पर मोहित हो गया। आखिर उसके पुत्र देवव्रत के आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा करने पर, सत्यवती उस से विवाही गई। देवव्रत की इस महान् प्रतिज्ञा के कारण उसका नाम भीष्म पड़ गया।

शान्तनु की इस नई रानी से दो पुत्र पैदा हुए—चित्रांगद और विचित्र वीर्य। पहिला युवावस्था में ही मर गया, इस लिये राजगद्दी दूसरे को मिली। दूसरे की दो रानियों से व्यास द्वारा दो पुत्र जन्मे—धृतराष्ट्र और पाण्डु। एक विदुर भी, पर दासी से। धृतराष्ट्र जन्म के अन्धे थे, इस लिये राजगद्दी उन्हें न मिल कर पाण्डु को मिली। धृतराष्ट्र की स्त्री का नाम गान्धारी था। उसके दुर्योधन आदि एकसौ पुत्र और दुशाला नाम की एक कन्या थी। पुत्र कौरव कहलाते थे। पाण्डुकी दो रानियाँ थीं—कुन्ती और माद्री। कुन्ती के युधिष्ठ्र, भीम और अर्जुन तीन पुत्र। एक कर्ण भी पर विचित्र प्रकार से जन्मा हुआ और उनसे कोई वास्ता न रखने वाला। माद्री के दो पुत्र-नकुल और सहदेव। कुल पाँच। यह पांडु कहलाते थे। पांडु रोग से पीड़ित रहने के कारण जल्दी ही मर गया। अब राजगद्दी धृतराष्ट्र को मिली। उस ने इन्साफ को सामने रख कर, युवराज-पद युधिष्ठ्र को दिया। कौरवों को यह बात बहुत बुरी लगी। वह ऊपर से मेल रख कर भीतर ही भीतर पाँडुवों को नाश करने की सोचने लगे। उन्होंने

कई षड्यन्त्र रचे। आखिर पांडव ब्राह्मणों का भेष धारण कर जहां-तहाँ भटकने लगे। इसी बीच में उन्हों ने एक स्वयंवर में जाकर, जहां दुर्योधन आदि भी गए हुए थे, उन्हें नीचा दिखा कर द्रौपदी विवाह ली। नित्य का क्लेश देख कर धृतराष्ट्र ने आधा राज्य पाँडवों को दे दिया। उसके उपलक्ष में युधिष्ठर ने राजसू-यज्ञ किया। दुर्योधनादि और भी जले। अब उन्हों ने उनका सर्वस्व छीन लेने के लिये जूए का आयोजन किया और युधिष्ठर को बुला भेजा। युधिष्ठर आये और सब कुछ हार गए। यहां तक कि द्रौपदी भी। इस अवसर पर दुर्योधन की चंडाल चौकड़ी ने बहुत नीचता दिखाई। बिचारी द्रौपदी को भरी सभा में घसीट कर नंगी करने की कोशिश की पर नग्न न कर सके। धृतराष्ट्र ने देखा, यह सब अन्याय से हुआ है। उन्हों ने पाँडवों का सब कुछ वापिस दिला दिया। दुर्योधन आदि को बड़ा गुस्सा आया। उन्हों ने फिर से जूए का जाल बिछाया और युधिष्ठरको बुलाभेजा। भोला युधिष्ठर फिर आगया। अब की बार निश्चय हुआ कि जो हार जाय राजपाट छोड़ कर १२ वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञात-वास करे। युधिष्ठर फिर हार गया। फलत द्रौपदी सहित पाँचों भाई बन को चले गये। माता कुन्ती को विदुर के यहां रख गये। १२ वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञात-वास के बाद, पांडव वापिस आए और अपना राज्य मांगने लगे, परन्तु दुर्योधन ने देने से साफ इंकार कर दिया। लाचार पांडवों को युद्ध पर उतर आना पड़ा और कौरव भी तैयार हो गए। भगवान् कृष्ण ने समझौता कराने की कोशिश की लेकिन कामयाबी न हुई। युद्ध का बाजा बज गया। कृष्ण, अर्जुन के सारथी बने। अपने सगे सम्बन्धियों

को देख कर अर्जुन को मोह हो गया। भगवान् ने गीता का उपदेश देकर मोह दूर किया। युद्ध आरम्भ हुआ। १८ दिन तक रहा। १८ अक्षौनी सेना दोनों ओर की मारी गई। तमाम बड़े-बड़े योद्धा काम आए। आखिर विजय पाण्डवों की हुई। कौरव सब मारे गये। धृतराष्ट्र और गान्धारी वन को चले गए। पाँडव भी कुछ देर राज्य कर, आखिर परीक्षित को राज्य देकर, द्रौपदी सहित हिमालय में जा गले।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास (२०)

वेदों की भाषा, आर्यों की आदिम भाषा है। उससे संस्कृत की उत्पत्ति हुई। संस्कृत से प्राकृत की। कई प्राकृत से संस्कृत की उत्पत्ति मानते हैं। प्राकृत के चार भेद हो गए। महाराष्ट्री, शौरसैनी, मागधी और अर्ध-मागधी। यही भाषाएं बिगड़ कर अपभ्रंश कहलाती हुईं, साहित्यक बन गईं। इन्हीं साहित्यक भाषाओं और बोल-चाल की बोलियों से हिन्दी का जन्म हुआ। मेरठ और देहली के आस-पास बोली जाने वाली हिन्दी ही इस समय सर्वमान्य भाषा है। हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, इसी के भिन्न-भिन्न नाम और रूप हैं। ब्राह्मी-लिपि से नागरी अक्षरों की उत्पत्ति हुई है। नागरी अक्षरों का पुराना लेख १०वीं सदी का मिलता है। सारे हिन्दी-साहित्य को चार भागों में बाँटते हैं।

(१) वीरगाथा काल—इसका समय १०५० से १३७५ तक माना गया है। इस में अधिकतर वीर-रस में ही कविताएं हुईं हैं। इस के दो भेद हैं—अपभ्रंश-काव्य और देश-भाषा काव्य। अपभ्रंश में हेमचन्द्र, सोमदत्त और शार्ङ्गधर आदि और देशभाषा में दलपति-विजय, नरपति-नाल्हा, चन्दबरदाई और जगनिक आदि कवि हुए हैं। भाषा का कोई रूप नहीं है। शब्दों की तोड़-मरोड़ खूब है।

(२) भक्ति-काल—इस का समय १३७५ से १७०० तक है। इसे दो भागों में बाँटा गया है। निर्गुण-भक्ति-काल और सगुण-भक्ति-काल। फिर इनकी भी आगे दो-दो शाखाएं स्थिर की गई हैं। निर्गुण की ज्ञान-प्रधान शाखा और प्रेम-प्रधान शाखा, एवं सगुण की राम-भक्ति-शाखा और कृष्ण-भक्ति-शाखा। ज्ञान-प्रधान-शाखा वाले कहते हैं, ईश्वर एक है, ऊंच नीच कोई नहीं है और पूजा आदि व्यर्थ है। इस में कबीर, नानक, दादू और सुन्दर आदि हुए हैं। प्रेम-प्रधान शाखा वाले लौकिक-प्रेम द्वारा ईश्वर की प्राप्ति मानते हैं। इन्हें सूफी भी कहा जाता है। इन में कुतबन, मंझन, जायसी आलम और उसमान आदि हुए हैं। राम-भक्ति-शाखा में तुलसीदास प्रधान हुए हैं। केशवदास, नाभा-दास और हृदयराम भी हुए हैं। कृष्ण-भक्ति-शाखा में सूरदास और नंददास आदि अष्ट-सखा और रहीम, रसखान आदि हुए हैं। मीरा का भी यही समय है।

(३) रीतिकाल—१७०० से १९०० तक। इसमें अधि-तर लक्षण ग्रन्थ बने, इसी लिये इसे रीति-काल कहते हैं। इस

काल के कवियों का जनता से कुछ सम्बन्ध नहीं था। था तो केवल राजाओं से। राजाओं के लिये ही यह आम तौर पर कविता किया करते थे। राजा लोग थे ज्यादातर विलासी। इस लिये इस काल की कविता, ज्यादातर शृङ्गार-रस की ओर कहीं-कहीं बिल्कुल नंगी ही है। बिहारी और देव इस काल के सर्वोच्च कवि हुए हैं। मतिराम और पद्माकर भी अच्छे रहे हैं। भूषण भी कम नहीं हैं। इन्होंने वीररस-प्रधान कविता ही ज्यादा लिखी है। इस काल के कवियों की भाषा अवधी और ब्रज की खिचड़ी है। फिर भी साफ नहीं है। शब्दों की तोड़-मरोड़ बहुत ज्यादा है। गुरू गोविन्द सिंह भी इस जमाने में हुए हैं। यद्यपि वह शृङ्गारी कवि नहीं हैं।

(४ गद्य-काल अथवा आधुनिक-काल—(१६०० से आज तक)। इस काल में पद्य-रचना की कमी और गद्य-रचना की उत्तरोत्तर वृद्धि रही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस काल के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। वह वर्तमान-काल की हिन्दी के जन्म दाता कहे जाते हैं। वह गद्य और पद्य, दोनों के सिद्धहस्त लेखक और कवि थे। उनसे पहले और पीछे, अनेक लेखक और कवि हुए हैं। लल्लूलाल सदल मिश्र, राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह का नाम भुलाया नहीं जा सकता। वैसे गद्य का नमूना १२वीं सदी का भी मिलता है। भारतेन्दु की विशेषता इस लिए है कि उन्हों ने हिन्दी का एक सर्वोपयोगी रूप बान्ध दिया और कविता में नई-धारा चलाई। आज के लेखक और कवि जनता में रह कर उसके भावों का प्रतिनिधित्व करने की चेष्टा करते हैं। खड़ी-बोली की तर्फ कवियों का विशेष ध्यान है। कई अच्छे २ काव्य और महा काव्य

खड़ी बोली में लिखे गए हैं। किस किस कवि और लेखक का नाम गिनाएं। सैंकड़ों हैं। स्त्रियां भी और पुरुष भी। कवियों ने छाया-वाद का और कुछ दूसरे लोगों ने हिन्दुस्तानी का अड़ंगा लगा कर मजा कुछ किर-किरासा कर रक्खा है।

वीर-गाथा काल के दो कवि (२१)

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उस काल को, जिस में राजपूत अपने ही भाइयों द्वारा बुलाए हुए, अथवा स्वतः ही आए हुए मुसलमान आक्रमण कारियों से लड़ रहे थे—वीर-गाथा-काल कहते हैं। यह समय ११वीं से१४वीं सदी तक का है। इस को चारण-काल भी कहते हैं और असल में यही काल कहना चाहिये, क्यों कि इस काल की कविता आम तौर पर चारणों (भाटों) द्वारा अपने आश्रय दाताओं के यशोगान में ही हुई है। इस काल के दो कवि ज्यादा प्रसिद्ध हैं—चन्दवरदाई और जगनिक या जगनायक।

(१) **चन्द**—इनका जन्म-संवत १२०५ और मृत्यु-संवत १२४८ माना जाता है। यही जन्म-मरण काल पृथ्वीराज चौहान का भी कहा जाता है। यह पृथ्वीराज के दरबारी-कवि थे—आम विश्वास है। कहते हैं, आज कल मिलने वाला "पृथ्वीराज रासो" महाग्रन्थ इन्हीं का बनाया हुआ है। उस में अन्तिम हिन्दु-सम्राट्,

पृथ्वीराज चौहान के जन्म से लेकर, उसके अन्तिम-युद्ध तक का वर्णन है। कई इतिहासज्ञ विद्वानों का कहना है कि यह ग्रन्थ पृथ्वीराज के समय का नहीं, बल्कि उसके बहुत बाद का बना हुआ है। इसका रचना-काल १६४० से १६७० के बीच का है। वह बतलाते हैं कि इसमें जो संवत दिए गए हैं, वह गलत हैं। घटनाओं का वर्णन भी इतिहास के विरुद्ध है। भाषा भी पृथ्वीराज के समय की नहीं है। नई और पुरानी मिली हुई भाषा है। और भी बहुत से दोष हैं। यह बात सब से पहिले कही, कविराज श्यामलदान और मुरारीदान ने और अब कहते हैं, रायबहादुर गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा। ओझा जी बड़े भारी इतिहासज्ञ हैं। उनकी दलीलें बड़ी जबरदस्त हैं। हम अपनी ओर से कुछ न कह कर, मिलने वाले "रासो" की कविता का एक नमूना देते हैं।

दूहा—पद्मसेन कूवर सुघर, ता घर नारि सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहु कला ससिभान॥

कवित्त—मनहु कला ससिभान कला सोलह सौ बन्निय।
बाल बैस ससिता समीप अमृतरस पिन्निय॥
बिगसि कमल मृग भ्रमर बैन खंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब मोति नख शिख अहि घुट्टिय॥
छत्र पति गयन्द हरि हंस गति बिह बनाय सचै संचिय।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय मनहु काम कामिनि रचिय॥

यह पद्मावति का वर्णन है और शृङ्गार रस में है। सारा रासो ऐसा ही नहीं है। उसमें बहुत कुछ है। ज्यादा वीर-रसात्मक

है। भाषा की वही बात—मिली-जुली है। कहीं नई है, कहीं पुरानी है। यह नई है। पुरानी इससे बहुत कठिन है और ज्यादा वही है। उसे समझना, सर्व-साधारण का काम नहीं है। जो संस्कृत और पुरानी प्राकृतों को समझ सकता है और जिसे राजपूताने की बोलियों का ज्ञान है, वही इसका आनन्द ले सकता है।

(२) **जगनिक**—इसका असली नाम जगनायक था। यह कालिंजर के चंदेल राजा परमाल का एक भाट था। इसने "परमाल-रासो" नाम का एक महान ग्रन्थ बनाया था। आल्हा-खण्ड उसी का एक खंड है। वर्तमान आल्हा-खंड बहुत-कुछ बदला हुआ है। ऐसी दशा में भाषा के लिहाज से उसका कोई मूल्य नहीं है। पुरबियों में आह्ला-खंड पढ़ने का बड़ा रिवाज है। वह उसे बड़े आनन्द से पढ़ते और गाते हैं। उस में आल्हा-ऊदल के अनेक विवाहों और युद्धों का वर्णन है। एक नमूना देखिये।

बारहे बरस ले कूकर जीयें आर तेरह ले जियें सियार।
बरसि अठारह क्षत्री जीयें, आग जीवन को धिक्कार॥

ज्ञान-प्रधान और प्रेम-प्रधान के

एक-एक कवि (२२)

वीरगाथा-काल या चारण-काल के बाद हिन्दी में जो नया काल आता है, उसको भक्ति-काल कहते हैं। भक्ति-काल को पहिले दो भागों में बांटा गया है—निर्गुण-भक्ति-काल और सगुण-भक्ति काल। फिर इनकी भी दो-दो शाखाएं निर्धारित की गई हैं—ज्ञान प्रधान-शाखा और प्रेम-प्रधान शाखा, निर्गुण-भक्ति काल की और राम-भक्ति-शाखा और कृष्ण-भक्ति-शाखा, सगुण-भक्ति काल की। हम यहाँ निर्गुण-भक्ति-काल की दोनों शाखाओं के एक-एक कवि का संक्षिप्त परिचय देते हैं।

ज्ञान-प्रधान शाखा के महात्मा-कबीर—यह जाति के कौन थे, यह अभी तक निश्चित न हो सकने पर भी जाति के जुलाह ही समझे जाते हैं, क्यों कि एक जुलाह दम्पत्ति नीमा नीरू ने इन्हें पुत्रवत पाल पोस कर बड़ा किया था। वैसे कहते हैं, यह एक विधवा ब्राह्मणी के पेट से पैदा हुए थे। समाज के डर से वह इन्हें जन्मते ही काशी के लहर-तारा तालाब पर छोड़ आई थी, वहीं से नीमा नीरू इन्हें उठा लाए थे। यह बात संवत १४५५ की है।

कबीर के समय हिन्दुओं में चारों ओर निराशा ही निराशा छाई हुई थी। मन्दिरों में बैठे देवी देवताओं ने उनकी कुछ सहायता न की थी, बल्कि अपनी सहायता भी वह आप न कर

सके थे। अपने निवास स्थानों को भी मुसलमान आक्रमण कारियों द्वारा लूटने से न बचा सके थे, इस लिये हिन्दुओं को मूर्ति-पूजा से आस्था करीब २ उठी सी हुई थी, पर साथ ही इसके उनका बाह्याडम्बर और झूठा जाति-अभिमान न उठा हुआ था। वह बराबर बना हुआ था। उधर मुसलमान आक्रमणकारी अब, आक्रमणकारी न रह कर स्थायी रूप से बस कर शासक बने हुए थे और चाहते थे कि तलवार के जोर पर ही नहीं, प्रचार के जोर पर भी इस्लाम फैलाया जाय। साथ ही इसके हिन्दुओं के लिये घृणा का भाव भी उनमें बराबर बना हुआ था और मिथ्या जाति अभिमान भी बड़े जोरों पर था।

हिन्दुओं और मुसलमानों—दोनों में कुछ ऐसे लोग भी थे, जो चाहते थे कि दोनों ही जातियों के लोग अब कटुता को छोड़ कर प्रेम से रहें। न मुसल्मानों ने अब कहीं चले जाना है और न हिन्दुओं ने ही मिट जाना है। कबीर उनमें प्रमुख थे। उन्हों ने दोनों ही के बाह्याडम्बरों का खण्डन किया और दोनों ही को एकेश्वर-वाद का उपदेश दिया। वह अवतार, मूर्ति पूजा, रोजा, नमाज और मन्दिर, मस्जिद वगैरः किसी पर विश्वास नहीं रखते थे। उन्हों ने साफ कहा है—

> पाहन पूजे हर मिलें, तो मैं पूजौं पहार।
> ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार॥
> कांकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।
> ता चढ़ि मुल्ला बांग दै, बहरो हुआ खुदाय॥

कबीर साहब का दोनों ही जातियों पर बड़ा प्रभाव था; इसलिये दोनों ही के बहुत से लोगों ने उनके उपदेशों को माना

और उनका रास्ता स्वीकार किया। आज भी कबीर-पन्थियों की संख्या आठ-नौ लाख के करीब है।

संवत १५५२ में कबीर देह छोड़ गये। उनके बाद, उनके शिष्यों ने भी उनके सिद्धान्तों का अच्छा प्रचार किया।

(२) मलिक मुहम्मद जायसी—यह प्रेम-प्रधान-शाखा के सर्व-श्रेष्ठ और प्रतिनिधि-कवि हुए हैं। मुहम्मद, इनका नाम था, मलिक इनकी उपाधि थी और यद्यपि यह जायस (बरेली) के रहने वाले न थे पर प्रसिद्ध यही होने के कारण 'जायसी'—यानी जायस के रहने वाले कहलाते थे। संवत १५४९–१५९८ इनका समय है। अमेठी के राजा इन पर बहुत श्रद्धा रखते थे, इसलिये जीवन का बहुत समय अमेठी में ही इन्होंने बिताया और वहीं मरे। यह देखने में बहुत करूप थे, पर गुणों के भण्डार थे। इनके बनाए हुए "अखरावट", "आखरी कलाम" और "पद्मावत" बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। पद्मावत में रानी पद्मावती की कहानी दोहा चौपाई में बड़ी सुन्दरता से लिखी हुई है। उसकी भाषा अवधी है। उसमें रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा आदि का बहुत सुन्दर समावेश हुआ है। विद्वान उसकी बहुत कदर करते हैं और है भी कदर के योग्य। नमूना:—

पानी में जस बुल्ला, तस यह जग उतराइ।
एकहि आवत देखिये, एकहि जात बिलाइ॥

ज्ञान-प्रधान-शाखा वाले अपने रूपकों में आत्मा को पत्नि और परमात्मा को पति मानते हैं और प्रेम-प्रधान-शाखा वाले, परमात्मा को पत्नि और आत्मा को पति मानते हैं। पहिली में पत्नि पति को खोजती है और दूसरे में पति पत्नि के लिये व्याकुल होता है, यही इनका आपस में फर्क है।

सगुण भक्ति-काल के दो कवि (२३)

निर्गुण भक्ति-काल के बाद सगुण भक्ति-काल आता है। इसकी भी—जैसा कि कहा गया है—दो शाखाएं हैं। राम-भक्ति शाखा और कृष्ण-भक्ति-शाखा। राम-भक्ति-शाखा के सर्व-श्रेष्ठ और प्रतिनिधि-कवि हुए हैं, तुलसीदास जी और कृष्ण-भक्ति शाखा के सर्वोत्कृष्ट कवि हुए हैं, सूरदास जी। पुराने लोग और उनका अंधाधुन्ध अनुकरण करने वाले आम नये लोग, सूरदास को दर्जा पहिला और तुलसीदास को दर्जा दूसरा देते हैं, पर हम तुलसीदास जी को दर्जा पहिला और सूरदास को दर्जा दूसरा देते हैं। इसके कई कारण हैं। विस्तारभय से नहीं लिखे।

(१) तुलसीदास—यह सरयूपारी दूबे थे। पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। संवत १५८९ में राजापुर में पैदा हुए और संवत १६८० की श्रावण शुक्ला सप्तमी को काशी में शरीर छोड़ गये।

कहते हैं कि यह गण्डमूल में पैदा हुए थे, इस लिये अशुभजान कर माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था। माता की दासी मुनिया इन्हें उठा कर ले गई पर जब यह पाँच वर्ष के हुए तो वह मर गई। अब नरहरिदास ने कृपा की और इनकी पालना करने लगे। बचपन में ही उन्हों ने इन्हें राम कथा सुनाई।

बड़े होने पर इनका विवाह हुआ और यह स्त्री के प्रेम में बुरी तरह फंस गये। यह देख कर एक बार स्त्री ने इन्हें खुब

फटकारा। फटकार लग गई और यह घर बाहर छोड़ कर वैरागी साधु हो गए। जीवन-भर यह राम-भजन में लीन रहे पर कहते हैं कि अन्तिम दिनों में इनकी आस्था कुछ कम हो गई थी। हनुमान बाहुक इसी लिये पूरा नहीं किया।

यह परम-भक्त, विद्वान् और स्वाभाविक कवि थे। महाकवि नन्ददास से इनका गुरूभाई का नाता था। कहने को तो लोग बहुत कहते हैं, पर असल में इन्होंने १२ ग्रन्थ रचे थे। जिन में 'मानस' सर्वोत्तम है। मानस से हमें बहुत कुछ मिलता है। उससे हमें उस समय के हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति का भी अच्छा ज्ञान होता है और स्त्रियों के प्रति लोगों के भावों का भी खासा परिचय मिलता है। 'कोउ नृप होई हमहिं का हानि, चेरी छाँडि कि होउब, रानी' से हमें पता चलता है कि उस समय हिन्दु कितने निराश और पराज़ित-मनोवृत्ति के थें, यद्यपि अबभी हैं, इत्यादि २।

रामायण में सब से बड़ा गुण यह है कि शुरू से आखिर तक कहीं उसका सिलसिला नहीं टूटता और एक-रस बना रहता है। यद्यपि वह गाने योग्य ग्रन्थ है पर बिना गाये भी उस से आनन्द मिल जाता है। मूर्ख, पण्डित सब कोई अपनी-अपनी बुद्धि अनुसार उससे आनन्द हासिल करते हैं। भाषा साफ और सुथरी है। चौपाइयों का दीर्घान्त कर देने से स्वाद बढ़ गया है।

मानस की लोक प्रियता एक इससे भी जानी जा सकती है कि हाल ही में रूस में इसका रूसी-भाषा में पद्यात्मक अनुवाद हुआ है। संसार के और देशों की भी इस पर निगाह है। हाल ही में महा पण्डित राहुल सांकृत्यायनजी ने आठवीं सदी में लिखी स्वयंभू ५ कवि की एक रामायण ढूंढ निकाली है, जो अपभ्रंश

भापा में हैं और कहते हैं, इसके जोड़ की है।

(२) सूरदास—अनुमान से जन्म सम्वत १५४० और मृत्यु सम्वत् १६२० स्थिर किया गया है। कई कहते हैं कि यह चन्द बरदाई के वंश में से थे। होंगे। यह जन्म के अन्धे नहीं थे, ऐसा भी कहते हैं। जो भी हो, यह महाकवि और परम भक्त थे। जब यह वल्लभाचार्य के शिष्य हो गये तो उनके यहाँ इनका मान बहुत बढ़ गया। वल्लभाचार्य जी के पुत्र विट्ठलनाथ जी ने चार पिता के शिष्यों को और चार अपने शिष्यों को मिला कर अष्टछाप की स्थापना की। सूरदास जी को उसमें पहिला स्थान दिया।

सूरदास जी का 'सूरसागर' श्रीमद्भागवत के आधार पर एक स्वतन्त्र रचना है। उसके एक-एक पद में जादू है। रस है और आनन्द है। भक्त उसे गा-गा कर प्रेम विभोर होते हैं। वह है भी ऐसा ही।

रीतिकाल के दो कवि (२४)

निर्गुण-भक्तिकाल और सगुण-भक्तिकाल—भक्तिकाल की इन दो धाराओं के बाद जो समय आता है, उसे रीतिकाल कहते हैं। यह हिन्दी का तीसरा काल है। इस काल के कवियों में बिहारी और देव का स्थान बहुत ऊंचा है।

(१) **बिहारीलाल**—यह ककोर-कुल के चौबे ब्राह्मण थे। इनका जन्म, ग्वालियर के निकट बसुआ गोबिन्दपुर में कहा जाता है। जन्म संवत् १६६० और मृत्यु, संवत् १७२० ख्याल किया जाता है। बचपन में यह बुन्देल खण्ड में रहते थे, ऐसा ख्याल है और कहते हैं कि जवानी में मथुरा में चले गये थे। वहाँ इनके ससुराल थे। ससुराल में अधिक दिन रहने से यह कुछ हल्के से पड़ गये, इस लिये उदास होकर जयपुर चले गये। जयपुर में उन दिनों महाराज जयसिंह राज्य करते थे। जब यह वहाँ गये तो उन दिनों राजा साहब ने एक नई शादी की हुई थी और नई रानी पर इतने मस्त थे कि दिन-रात उसी की आरती करते रहते थे। महलों से बाहर निकलते ही नहीं थे। बिहारीलाल ने कागज के टुकड़े पर एक दोहा लिख कर भेजा—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहि काल।
अली कली ही ते बिंध्यो, आगे कौन हवाल॥

दोहा सुन कर राजा जयसिंह की आँखें खुल गईं और उन्होंने इन्हें दर्बार में रख लिया। वह उनके दर्बारी कवि हो गये। एक अशर्फी रोज इनका वजीफा लग गया। सारी जिन्दगी

में इन्होंने एक ही पुस्तक बनाई—'बिहारी सतसई'—जो शृङ्गार रस की एक ही पुस्तक है। उस पर आज तक ६० के करीब टीका हो चुके हैं। फिर भी विद्वान् नये-नये अर्थ निकालते रहते हैं। सतसई में कुल ७०६ दोहे हैं। कुछ नमूने के तौर पर देखिए—

इन दुखिया अँखियान को सुख सिरजोई नाहीं।
देखत बनै न देखते अन देखे अकुलाहीं॥
तू रह सखि हौं हि लखौ, चढ़ि न अटाबलि बाल।
सबही बिनु ससिही उदै, दैहैं अर्घ अकाल॥
मानहु विधि ने अच्छ छवि स्वच्छ राखिबे काज।
दृग-पग पोंछन को किय, भूषण पायंदाज॥
पहिर न भूषण कानक के, कहि आवत एहि हेत।
दरपन के से मोरचा, देह दिखाई देत॥

(२) देव—यह भी बिहारी की टक्कर के कवि हुए हैं। इन का जन्म, संवत् १७३० में हुआ था और मृत्यु १८०२ के लगभग ख्याल की जाती है। जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे। प्रतीत होता है कि अपने जीवन में इन्होंने सारे भारत की यात्रा की थी; क्योंकि इनकी कविता में प्रत्येक प्रान्त की स्त्रियों का विलास वर्णित है। अनेक हिन्दु मुसलमान राजाओं के यह आश्रित रहे पर किसी ने भी यथोचित कदर न की। यह बड़े बिलासी कवि थे। इन्होंने जो कुछ लिखा, शृङ्गार रस में ही लिखा। बुढ़ापे में कुछ ऐसा भी लिखा, जो वैराग्यमय है पर बहुत थोड़ा। वह भी इन्द्रिय शिथिल हो जाने के कारण। इनके बनाये हुए करीब २७ ग्रन्थ कहे जाते हैं। नमूने के तौर पर एक कविता देखिये:—

चोट लगी इन नैनन की, दिनहूँ इन खोरिन सों कढती हौ।
देखन में मन मोहि लियो, छिपि ओट झरोखन के झँकती हौ॥
देव कहै तुमही कपटी, तिरछी अँखियाँ करिकै तकती हौ।
जानि परै न कछू मन की, मिलिहौ कबहूँ कि हमै ठगती हौ॥

हिन्दी-गद्य के निर्माता (२५)

(तीन जन)

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में गद्य-काल चौथा काल है। इसके भी चार भाग हैं पर हम यहाँ इसके प्रारम्भिक काल के ही तीन जनों का परिचय देते हैं।

(१) राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द—राजनीतिक दृष्टी से अथवा राष्ट्रीय दृष्टि-कोन से राजा शिवप्रसाद का जीवन आदरनीय नहीं है पर हिन्दी की सेवा के ख्यालसे बहुत आदरनीय है। राजा साहब के पूर्वज पहिले देहली में रहते थे, फिर मुरशिदाबाद में चले गये और बाद में काशी में आ बसे। यह स्थानान्तर कई पीढ़ियों में हुआ।

राजा शिव प्रसाद के पिता का नाम, बाबू गोपीचन्द था। वह काशी में रहते थे। वहीं राजा साहब का जन्म, संवत १८८० में और निधन १९५२ में हुआ। कुल ७२ वर्ष के

जीवन में यद्यपि राजा साहिब ने ज्यादा समय हकूमतों की सेवा में ही बिताया—पहिले भरतपुर हकूमत की और बाद में अंग्रेजी हकूमत की—और उसी के फल-स्वरूप राजा का खिताब भी पाया पर हिन्दी की सेवा में भी कोई कोर-कसर न रक्खी।

एक समय राजासाहब स्कूलों के इन्सपैक्टर थे। उन दिनों शिक्षा-विभाग में मुसल्मानों का बड़ा जोर था और वह चाहते थे कि हिन्दी का पठन-पाठन मिटा दिया जाय। सर्वत्र उर्दू को ही प्रधानता मिले, पर आप कब यह बर्दाश्त कर सकते थे। आपने हिन्दी के लिये बहुत जोर लगाया और साहित्य, इतिहास, भूगोल और व्याकरण वगैर: सम्बन्धी ३५ पुस्तकें हिन्दी में लिख कर मुसलमानों के इस इतराज को मिटा दिया कि हिन्दी में है क्या, जो बच्चों को पढ़ाया जाय। आप उर्दू-मिश्रित हिन्दी के पक्षपाती थे। आपके प्रयत्नों से हिन्दी को बड़ा लाभ पहुंचा।

(२) राजा लक्ष्मण सिंह—यह भी उपाधीधारी राजा थे। सन ५७ के गदर में इन्होंने अंग्रेजों को बहुत सहायता की थी। उसी के फलस्वरूप इन्हें राजा का खिताब मिला था। राष्ट्रीय दृष्टिकोन से यह भी राजा शिवप्रसाद की कोटि के ही थे।

अक्तूबर १८२६ में आगरा में राजा साहब का जन्म हुआ और मृत्यु भी वहीं जुलाई सन् १८९६ में हो गई। करीब ७० वर्ष तक यह जिये।

राजा शिवप्रसाद की तरह राजा लक्ष्मणसिंह भी बहुभाषा-विद और हिन्दी के बड़े भारी हिमायती थे। फर्क सिर्फ यह था कि वह उर्दू-मिश्रित हिन्दी के पक्षपाती थे और यह शुद्ध-हिन्दी

के। इन्होंने भी हिन्दी में कई ग्रन्थों की रचना की । कालीदास के रघुवंश, शकुन्तला और मेघदूत का अनुवाद करके यह अमर हो गये।

आरम्भ में राजा लक्ष्मणसिंह १००) रु० महीना पर पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट के दफ्तर में एक अनुवादक के पद पर नौकर हुए। बढ़ते-बढ़ते ८००) रु० महीना पर बुलन्द-शहर के डिपुटी क्लेक्टर हो गये।

(३) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—यह इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंशज थे। जाति के वैश्य और काशी के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम गोपालचन्द्र था। वह भी कवि थे। इन की छोटी अवस्था में ही वह सुरपुर सिधार गये। घर में दौलत की कोई कमी न थी, इस लिये इनका लालन-पालन बहुत शान शौकत से हुआ। बड़े होकर पहिले इनका मन पढ़ने लिखने में कुछ न लगता था पर ज्यों ही यह माता के साथ जगन्नाथ की यात्रा करके आये, इनका झुकाव विद्या की ओर बहुत हो गया और जल्दी ही बहुत कछ सीख गये। कविता करना तो इन्हें बपौती में मिला था, इस लिये बहुत छोटी अवस्था में ही यह कविता करने लग गये। पहिला दोहा इन्होंने सात वर्ष की अवस्था में बनाया, जिसे सुनकर इनके पिता बहुत प्रसन्न हुए।

यह जीवन-भर हिन्दी की सेवा करते रहे। हिन्दी के लिये ही जिये और हिन्दी के लिये ही मरे। लाखों रुपयों की जायदाद कुछ ही समय में खर्च कर, पैसे-पैसे के लिये तंग होगये। उदारता फिर भी न गई। ज्योंही कहीं से कुछ आया

कि झट खर्च कर डाला । किसी को दे दिया। इनके यहाँ हिन्दी कवियो का जमघट लगा रहता था । यह सब की सेवा पालना करते थे। अपने जीवन में इन्होंने करीब १७५ ग्रन्थ खुद लिखे और ७५ के करीब दूसरों से लिखवाये। हिन्दी की काया ही पलट दी। उसका नया रूप स्थिर कर, उसे राष्ट्र-भाषा होने के योग्य बना दिया। यह हिन्दी के आदि राष्ट्र-कवि थे। देश का दर्द, जाति का दर्द इनके शब्द-शब्द से टपकता है। ६ सितम्बर १८५० में पैदा हुए और ६ जनवरी १८८५ को स्वर्ग सिधार गए। काशी के पण्डितों का कहना था—

जो गुन नृप हरिचन्द में, जगहित सुनियत कान ।
सो सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान ॥

भ्रमण-वृत्तान्त

भ्रमण-वृत्तान्त के

६ लेख

'गौरी-शंकर' पर (१)

पाश्चात्य-लोग बड़े विनोदी और साहसी होते हैं—यह मानना ही पड़ेगा। अपनी जान की कुछ परवाह न कर, वह बड़े-बड़े खतरनाक कामों में हाथ डाल देते हैं और आखिर एक न एक दिन कामयाब हो ही जाते हैं। कठिनाईयों और असफलताओं से जरा भी नहीं घबड़ाते।

हमारे देश में हिमालय का सर्वोच्च शिखर गौरीशंकर है। अंग्रेज लोग इसे मौण्ट-एवरेस्ट कहते हैं। यह दुनियां में सब से ऊंचा शिखर है। इसकी ऊंचाई २९१४१ फीट है। दार्जिलिंग से कई स्थानों को लांघ कर 'रेंगबुक' नामक स्थान पर जाना होता है। वह नेपाल और तिब्बत की सीमा पर है। वहां से गौरीशंकर साफ दिखाई देता है। वह स्थान गौरीशंक से १५ मील नीचे है।

पश्चिम के लोगों को शौक हुआ गौरीशंकर पर चढ़ने का। सब से पहले १८९३ में सर फ्रान्सिस-यंग हसबैंड को ख्याल

आया पर वह ख्याल ही रहा। अमल कुछ न हुआ। अमल हुआ १९२१ में। कर्नल हावर्ड एक दल लेकर गौरीशंकर पर चढ़े। २३००० फीट तक चढ़ कर लौट आये। अगले वर्ष फिर एक दल चढ़ा। कामयाब तो वह भी न हुआ पर पहले दल से काफी आगे बढ़ गया। वह कोई २७००० फीट तक चढ़ गया। इस दल को एक ऐसी दुर्घटना का सामना करना पड़ा कि जिस के फल-स्वरूप बिचारे सात कुलियों की जान जाती रही। १९२४ में लेफ्टीनेन्ट कर्नल नार्टन के नेतृत्व में फिर प्रयत्न हुआ। पहले अनुभवों से लाभ उठाते हुए इस दल ने काफी उन्नति की। दल का नेता २८१२६ फीट तक ऊपर चढ़ गया। दल के दो सदस्यों ने और हौसला किया। वह एक-एक पीपा आक्सीजन का लेकर अकेले ही आगे बढ़ गये। बढ़ते-बढ़ते ख्याल है—२८२३० फीट तक पहुँच गये। वापिस आते हुए देर हो जाने के कारण सम्भवतः कहीं टिक गये और न जाने किस प्रकार मर गए। लाशें भी उनकी न मिल सकीं। दल वापिस आगया। फिर प्रयत्न हुआ, फिर प्रयत्न हुआ। सन् १९३८ तक होता ही रहा पर काम-याबी न मिली। उधर विश्वव्यापी-जंग छिड़ गया, इसलिये प्रयत्नों का सिल-सिला रुक गया। न छिड़ता तो अब तक कामयाबी हो गई होती। जिन्होंने २८ हजार फीट से ऊपर तक जा निशान लगाया है, वह एक दिन अन्तिम चोटी तक भी जा निशान लगायेंगे। वैसे वायुयान से ३३ हजार फीट की ऊंचाई तक उड़ कर गौरीशंकर के दर्शन किये जा चुके हैं।

मानस-सरोवर और कैलाश (२)

पौराणिक ग्रन्थों में मानस-सरोवर और कैलाश का बड़ा अनुपम वर्णन और भारी महात्म्य लिखा है। यहां उसी की यात्रा का सुशील बाबू के यात्रा-विवरण से मोटा-नोटा वर्णन किया जाता है। पहिले यह समझ लेना चाहिये कि यह यात्रा सुगम नहीं है। जोखिम का काम है। जेठ-अषाढ़ के दिनों में जीवन की अनेक जरूरी चीजें लेकर यात्रा की जाती है। यात्रा के लिए धन भी चाहिये और बल भी। कोई साथी भी।

काठ-गोदाम से मोटर-बस द्वारा ८१ मील का पहाड़ी रास्ता तय करके अलमोड़ा पहुंचना होता है। यह पांच हजार फीट की ऊंचाई पर बसा हुआ एक सुन्दर नगर है। यहाँ से आगे न मोटर बस चलती है, न घोड़ा गाड़ी। कैलाश की असली यात्रा यहीं से शुरू होती है। यहां से अनेक ऊंचे-नीचे रास्ते और नदी नाले लांघ कर धारचूला पहुंचते हैं। यह अलमोड़ा से ६० मील पर है। इसके मार्ग में बेरीनाग और आसकोट, यह दो बड़े गाँव पड़ते हैं। आसकोट के राजा, यात्रियों की अच्छी खातिरदारी करते हैं। धारचूला से दो मील के करीब रामकृष्ण-मिशन का तपोवन है। यह बड़ा रमणीक-आश्रम है। इसके नीचे अर्द्धचन्द्राकार काली-नदी बहती है। इस आश्रम की ओर से भी यात्रियों को यथेष्ट आराम मिलता है। फिर बड़ा मुकाम आता है, गर्बियांग। गर्बियांग का दूसरा नाम व्यास-क्षेत्र भी है, क्यों कि किसी समय यहां व्यास जी रहते थे। ब्रिटिश-राज्य का आखिरी

पोस्टआफिस यहीं है। यहाँ करीब दो सौ के घर हैं। यहां विवाह कोर्टशिप-रीति से होता है। असबाब ढोने के लिए भैंसे से मिलते-जुलते झब्बू यहीं से करने पड़ते हैं। दुभाषियों को भी यहीं स लेना होता है। यह दस हजार तीन सौ फीट की ऊंचाई पर है। इसके आगे बड़ा मुकाम तकलाकोट आता है। समुद्र-तल से १६७८० फीट ऊंचा बर्फ से ढंपा हुआ लिपुलेक पहाड़ इसी के रास्ते में आता है, जिसे पार करने के बाद तिब्बत का राज्य आरम्भ होता है। तकला-कोट का तिब्बती नाम 'पूराँग है। यह समुद्र तल से १५ हजार फीट की ऊंचाई पर है। यहाँ तिब्बत का गवर्नर रहता है, जिसे 'जुगान-पूस' कहते हैं। यहाँ से कैलाश, चार दिन का रास्ता है। रास्ते में पहिले रावण-झील आती है, जो समुद्र-तल से १५ हजार ५६ फीट की ऊंचाई पर है। रावण झील का जल नीलकान्त मणि के समान चमकता है। इर्द-गिर्द रंग-बेरंगे कई पहाड़ हैं। पौराणिक ग्रन्थों में झील की उत्पत्ति रावण के पसीना से या उसके हजार वर्ष तक रोते रहने से हुई लिखी है। रावण-झील के बाद मानसरोवर के दर्शन होते हैं। यह ब्रह्मा का बनाया हुआ बड़ा सुन्दर सरोवर है। समुद्र-तल से १५०६८ फीट की ऊंचाई पर है। तिब्बती इसे सो-मा-वाँग' कहते हैं। इसकी परिधि ६० मील है। गहराई ज्यादा से ज्यादा २६८ फीट है। इसके उत्तर-पश्चिमी तट पर जंगली-हंस नजर आते हैं। मानस-सरोवर शतद्रु, सिन्धु और ब्रह्म-पुत्र जैसे नदों का उद्गम-स्थान है। इसके पश्चिमी-तट से नीचे उत्तर की ओर चलने पर कैलाश आता है। कैलाश की ऊंचाई २२ हजार फीट से ज्यादा है। यह सदा बर्फ से ढंपा रहता है। तिब्बती लोग इसे 'कांगरिंपो' कहते हैं। इसकी परिक्रमा ३० मील के करीब है।

रास्ते में गौरीकुंड आता है, जो बहुत ऊंचाई पर है। कुदरत के खेल देखते ही बनते हैं। शब्दों द्वारा कौन वर्णन कर सकता है।

तिब्बत में विदेशी-पर्य्यटक (३)

(पुराने किस्से)

बहुत समय से तिब्बत संसार में एक रहस्यमय देश रहा है, यद्यपि अब भी है पर उतना नहीं है। यह ऐशिया के दक्षणीय भाग में स्थित है। इस की उत्तरीय सीमा में हिमालय पर्वत है। तिब्बत का कुल क्षेत्रफल ४५७२०० वर्ग-मील है। अबादी ज्यादा तर लाहसा (राजधानी) में और चीनकी सीमा परही है। पश्चिमी भागमें बहुत कम लोग रहते हैं। बड़े-बड़े पहाड़ोंसे घिरा हुआ यह देश है, सिन्धु, शतद्रु, ब्रह्म-पुत्र, होयाँग हो, ई-यांग, शी-क्याँग आदि संसार की बड़ी-बड़ी नदियां इसकी पर्वत श्रेणियों से निकलती। मानस-सरोवर और रावण-भील इसके पश्चिम में हैं।

तिब्बत में सब से पहिला विदेशी-यात्री, जिस के विषय में कुछ बृत्तान्त मिलता है, सन १३२८ ई० में एक रोमन-कैथोलिक गया। भारतीय-विद्वान् उस से बहुत पहिले वहाँ जा चुके थे, लेकिन बुलाने पर। फिर १६६१ में दो फ्रांसीसि भाई ग्रुवर और डाक्टर आरविले गए। लेकिन पता नहीं वह लाहसा तक

पहुंचे कि नहीं। सन् १७७४ में भारत के वायसराय वारेन हेस्टिंग ने तिब्बत और भारत के दर्म्यान व्यापार चालू करने के लिए जार्ज वोगल को कमिश्नर बना कर भेजा, पर वह शिगातजे तक ही रहा। उसकी पत्नि भी उस के साथ थी। सन १७८१ में हेस्टिंग ने फिर प्रयत्न किया और कैपटन टर्नर को अधीनता में एक कमीशन भेजा। वह दो वर्ष तक तिब्बत में रहा।

हेस्टिंग की कृपा से ईसाई मिशनरियों को भी मौका मिल गया कि वहां जाकर ईसाई-मत का प्रचार करें पर उन्होंने हेस्टिंग की कृपा का अनुचित लाभ उठाना शुरू किया। फल यह हुआ कि तिब्बत की सरकार नाराज हो गई और उसने परदेशी-मात्र के लिये तिब्बत का द्वार बन्द कर दिया। सन १८७१ में एक रूसी सज्जन ने, जिसका नाम था—कर्नल प्रोजवेस्की—दो बार तिब्बत जाने की कोशिश की पर जा न सका। आज्ञा ही न मिली। कहते हैं कि इससे बहुत पहले राजा राममोहन राय तिब्बत हो आए थे। कहां तक? पता नहीं। आखिर सन् १८८१ ८२में बंगाली बाबू शरत्चन्द्र बोस तिब्बत पहुंचे। पहली बार शिगातजे तक पहुंचे और दूसरी बार लाहसा तक पहुंच गए। लाहसा में केवल २० दिन तक रहे। वह भारत-सरकार की ओर से गये थे और बड़ी होशियारी के साथ वहाँ रहे थे। फिर भी तिब्बत की सरकार बहुत बिगड़ी और उसने शरत बाबू को आश्रय देने वाले तमाम लोगों को दण्ड दिया। बड़े लामा सेग-चेन को पानी में डबो-डबो कर मारा। जाने वालों का साहस फिर भी नहीं टूटा और कितनों ने ही कोशिश की। जापानी यात्री इकाई कावा-गुची उन सबसे बहादुर निकला। वह बिना किसी सरकारी

सहायता के तीन वर्ष तक तिब्बत में रहा। सन् १८६६ के आरंभ में उसने तिब्बत के लिये तैयारी की। वह खम्बूरोंग, अर्थात् बीच घाटी के गुप्त मार्ग से गया। इसके लिये उसे नेपाल जाना पड़ा। इस गुप्त मार्ग में उसे कई बार मौत का साम्हना करना पड़ा। अब तो कई होआए हैं पर सीधे मार्ग से। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन दो तीन बार तिब्बत गए हैं। वह सफल भी बड़े हुए हैं।

सुलेमान सौदागर (४)

फारस का रहने वाला था, पर उसका कारोबार बसरा में था या वह बसरा में आ बसा था। व्योपारार्थ दूर-दूर देशों में जाने वाले मुसलमानों में वह पहला सौदागर था। उसकी यात्रा का समय, नौवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ८५१ से जरूर पहले का है। उसने भारत और चीन की कई बार यात्रा की। वह लिखता है —

हरकन्द (बंगाल की खाड़ी) और दलारोबी (खंभात की खाड़ी) के बीच १६०० द्वीप हैं। यह एक स्त्री के अधिकार में हैं। यहाँ अंबर बहुत होता है। यहाँ के लोगों की सम्पत्ति कौड़ियाँ हैं। यहाँ के लोग नारियल की छाल की कमीजें और नारियल के वृक्षों से नौकाएं और घर बना लेते हैं। लंका से मोती निकाले जाते हैं। यहीं रोहन (रोहणाचल अथवा कोहआदम) नाम का

एक पर्वत है। उसकी चोटी पर बाबा आदम के पांव का निशान है, जो ७० हाथ लम्बा है। हरकन्द-सागर में रामनी नाम का एक टापू है। उस में भीमसेनी कपूर और सोने की खानें हैं। नियान् (सुमात्रा के पूर्व में नियास) में सोना बहुत ज्यादा होता है। यहाँके लोग नारियल का भोजन करते हैं। जितने शत्रुओं का वध करके उनकी खोपड़ियें कोई प्राप्त कर सके, उतनी ही स्त्रियों से विवाह कर सकता है। यहां मनुष्यों की एक ऐसी भी जाति है, जो मनुष्यों को खा जाती है। अंडेमन टापुओं के निवासी मनुष्यों को जीवित ही खाजाते हैं। वहां से कुछ आगे एक पहाड़ी टापू है, जहाँ चाँदी की खानें हैं। हरकंद-सागर में लोखम नाम की मछली मनुष्यों को निगल जाती है। भारतीय-महासागर के मुलजान नामक टापू के लोग जब किसी प्रदेशी को पा जाते हैं, तो उल्टा टांग कर कच्चा ही खा जाते हैं। इसी महासागर के एक भाग में एक उड़ने वाली मछलियें होती हैं और एक नारियल के वृक्षों पर चढ़ कर नारियल का पानी पी जाने वाली। चीनी लोग शराब नहीं पीते पर गंदे बहुत होते हैं। भारत के रोहमी-राज्य में एक ऐसा सूती कपड़ा बनता है, जो छोटी अंगूठी के घेरे से निकल जाता है। यहां गेंडाभी बहुत होता है। चीन में मरे हुए को पूरे एक वर्ष तक चूना डाल कर या मुसब्बर डाल कर रख छोड़ते हैं और पूरे तीन साल तक रोते हैं। जो कोई नहीं रोता, उसे डंडों से पीटा जाता है। मृतक के आगे भोजन भी रक्खा जाता है। चीनी मुर्दों को गाड़ते हैं। यह पढ़े लिखे भी खूब होते हैं। चीन में भूमि कर नहीं है। चीन के बादशाह को निजि आमदन नमक और चाय के कर से होती है। चीन में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए राहदारी दरकार होती है। न्याय व्यवस्था अच्छी है। दवादारू का भी सरकारी प्रबन्ध है। बुढ़ापे

में सहायता की जाती है। शिक्षा का भी सुप्रबन्ध है। भारत में अपराधियों को गर्म लोहे से परीक्षा होती है और खोलते पानी से भी। स्त्री भगाने वाले को और भागने वाली को मौतकी सजा दी जाती है। बलात्कार का भी दण्ड, मौत है। चीन और भारत, दोनों में चोर को मौत की सजा भी होती है। भारत के लोग दाढ़ी तो बहुत लम्बी रखते हैं, पर मूछें नहीं। किसी के मरने पर सर और दाढ़ी मुंडवाते हैं। पहिरावा अरब वालों जैसा है। मीला टापू में सफेद बाज होते हैं।

इब्बन बतूता (५)

बहुत प्राचीन समय में भी, जबकि यात्रा के साधन सुगम न थे, यात्रा करना महान् कष्टदायक था, यहांतक कि मौत का मुकाबला करना था-मुसलमान यात्री जान जोखिम में डालकर भी देश देशाँतरों की यात्रा किया करते थे। ऐसे महान् साहसी यात्रियों में इब्बन बतूता का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इब्बन की यात्रा का वृत्तान्त, सब से पहिले फ्रांसीसी-भाषा में छपा है। फिर अन्यान्य भाषाओं में।

इब्बन मराक्को का रहने वाला था। १३०३ ई० में पैदा हुआ। २२ वर्ष की अवस्था में मक्का की यात्रा को निकल पड़ा।

उत्तर अफ्रीका, मिश्र और सीरिया लांघ कर बगदाद पहुंचा। वहाँ से लाल-सागर पार करके अफ्रीका के पूर्वी किनारे स्थित मोमबासा पहुंचा। वहां से दक्षिणी अरब की ओर गया। वहां नारियल के पेड़ देख कर बड़ा चकित हुआ। फिर फारस-उप सागर पार करके मक्का पहुंचा। वहां से अनेक देश देशान्तर देखता फिरता अफगानिस्तान के रास्ते भारत पहुंचा। भारत-यात्रा में उसने एक ऐसा मनुष्य देखा, जो ३५० वर्ष का था। उसके, प्रति एक सौ वर्ष पीछे नये दांत निकलते थे। भारत में उन दिनों मुहम्मद तुगलक का राज्य था। बतूता देहली आया। तुगलक ने उसे दरबार में रख लिया। बतूता आठ वर्ष तक भारत में रहा। इस बीच में जो कुछ उसने देखा, सुना, अपने यात्रा-वृत्तान्त में नोट किया। वह लिखता है कि सुल्तान तुगलक के लिये गंगाजल दौलताबाद आया करता था, ४० दिन लगते थे। सुल्तान को गंगाजल से बड़ा प्रेम था। उसने उस समय की रस्मो-रिवाज का वर्णन किया है। पति के मरने पर स्त्री का सति होना भी उस समय एक रिवाज था। देहली-सम्राट ने इब्बन को चीन सम्राट के पास भेजा। इब्बन जहाज पर सवार हुआ। जहाज बड़ा भारी और सुन्दर था। उस समय के जहाज एक-एक हजार यात्री चढ़ा लेते थे। इब्बन का जहाज तूफान में आ गया और डूब गया। इब्बन बड़ी मुश्किल से बचा। अब वह और कहीं न जाकर सिलोन को चला गया। वहां उसने रोहणाचल अथवा कोहआदम नामक पहाड़ देखा। कहते हैं कि जब बाबा आदम को स्वर्ग से निकाला गया था तो वह एक हजार वर्ष तक एक पाँव से इस पहाड़ की चोटी पर खड़ा रहा था। उसके पांव का निशान अब तक है। वहां से वह सुमात्रा, जावा.

आदि से होता हुआ चीन के चिंशु बन्दर में पहुंचा। चीन की राजधानी पेकिंग में भी गया। चीनियों के अतिथी-सत्कार की इब्न ने बहुत प्रशंसा की है। लिखता है कि जो चीनी किसी विदेशी की उचित सेवा न करे और उससे दुर्व्यवहार करे, उसे दण्ड मिलता है। चीन में बाजीगरों के और जादूगरों के खेल देख कर भी इब्न बहुत प्रसन्न हुआ। १३४६ में इब्न स्वदेश को लौट गया। कुछ दिन स्वदेश रह कर अफ्रीका के रास्ते स्पेन पहुंचा। इस बार की यात्रा में उसे बड़ा कष्ट हुआ। जब लौटा तो मक्का के बादशाह ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और उसके यात्रा-वृत्तान्त को लेख बद्ध करा डाला। इब्न को अपने दरबार में रख लिया।

धार्मिक नेता

धार्मिक नेता आदि

७ लेख

गौतम बुद्ध (१)

ई० पू० छठी सदी में गौतम बुद्ध हुए। भारत का सिलसिलेवार इतिहास प्रायः इसी सदी से मिलता है। इस सदी में, या इसके आस-पास संसार में और भी कई महापुरुष हुए हैं। चीन में महात्मा कनफ्यूशस और लाओ-जे, ईरान में महात्मा जर्थुस्तु या जोरेस्टर, सामोस के यूनानी टापू में पाइथा गोरस और खुद भारत वर्ष में ही महावीर स्वामी।

महात्मा बुद्ध में कई विशेषताएं थीं, एक यह भी कि वह अपने आपको ईश्वर, या ईश्वर का दूत घोषित नहीं करते थे। वह अपने समय के एक मात्र साम्यवादी थे। उनके साम्यवाद का आधार जैसा कि 'बौद्ध धर्म' में भी बतलाया जायगा—आर्थिक न होकर आध्यात्मिक था, यह बात दूसरी है।

जीवनी

इक्ष्वाकु वंश में राजा मान्धाता से सैंकड़ों पीढ़ी बाद उन्हीं के वंश में सुजात नाम का एक राजा हुआ। उसकी भी राजधानी अयोध्या ही थी। उसने पाँच पुत्र और पाँच कन्याओं के होते हुए भी बुढ़ापे में जयन्ती नाम की एक साधारण स्त्री से विवाह कर लिया। जयन्ती ने राजा को वश में करके अपने पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने के लिये अपने सौतेले पुत्रों को देश निकाला दिलवा दिया। भाइयों के साथ बहिनें भी चली गईं। कपिल मुनि के आश्रम के पास जाकर उन्होंने एक नया नगर बसा लिया और क्योंकि उस समय ऐसा हो सकता होगा, इस लिये उन्होंने आपस में ही विवाह भी कर लिया। अब उनका जो वंश चला, वही शाक्य-वंश कहलाया। भगवान् गौतम बुद्ध उसी शाक्य-वंश में जन्मे।

शाक्यों का देश, कान्यकुब्ज से लेकर कुमायुं तक फैला हुआ था। राजधानी थी रोहिणी-नदी के किनारे कपिलवस्तु, जहाँ आज कल भुइला गाँव बसा हुआ है। यह गांव-काशी से करीब सौ मील से ज्यादा उत्तर तथा अयोध्या से २५ मील उत्तर-पूर्व के कोने में है। विक्रमाब्द से ५६७ वर्ष पहिले वैशाख की पूर्णिमा को लुम्बिनी-कानन में बुद्ध का जन्म हुआ। उस समय इनका नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। सिद्धार्थ के पिता का नाम शुद्धोदन और माता का नाम महामाया था। शुद्धोदन कपिल वस्तु के यशस्वी राजा थे। महामाया की एक और बहिन भी शुद्धोदन को ब्याही हुई थी। नाम था उसका महाप्रजावती। सिद्धार्थ अभी सात ही दिन के थे कि महामाया का देहान्त हो गया, इस लिये सिद्धार्थ के लालन-पालन का भार महाप्रजावती ने

अपने कन्धों पर ले लिया। सिद्धार्थ बचपन से ही दयालु और विचारवान थे। विलक्षण-प्रतिभा वाले थे। थोड़े समय में ही उन्होंने सब प्रकार की विद्या हासिल करली। उनका मन संसार की ओर नहीं लगता था, यद्यपि लगाने के लिये पिता ने बहुत कोशिश की। देवदह के राजा दण्डपाणी की कन्या गोपा से उनका विवाह भी कर दिया। बूढ़ा, रोगी और मुर्दा देख वह और भी अधीर हो उठे और आखिर एक साधु को देख कर किसी नतीजे पर पहुंच गये। फिर जब उन के घर में राहुल नाम का पुत्र हो गया तो एक रात चुपके से घर छोड़ कर निकल गए। यह बात आषाढ़ पूर्णिमा की है। अनामा नदी पर एक भिखारी का भेष धर कर अपने प्रश्नों का उत्तर हासिल करने के लिये चल पड़े। वह वैशाली और राजगृह में भी गए, जहाँ बड़े-बड़े पण्डित थे पर किसी ने समाधान न किया। राजगृह से पांच विद्यार्थी भी आप के साथ हो लिये। गयशीर्ष पर्वत पर सब ने तप करना शुरू किया। सिद्धार्थ को उससे भी शान्ति न मिली। उन्होंने तप करना त्याग दिया। यह देख कर उनके सब साथी उनका साथ छोड़ गए। सिद्धार्थ तप से गया हुआ बल, पुनः प्राप्त कर वहीं एक अश्वत्थ-वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठ गये। सहसा ज्ञान हो गया। आत्मा जगमगा उठी। बुद्ध हो गए। बुद्ध ने सब से पहले अपने उन पाँच सथियों को ज्ञान दिया, जो काशी के पास ऋषिपतन नामक जंगल में तप कर रहे थे। फिर राजगृह में और तदनन्तर कपिलवस्तु में भी गए। जहाँ-जहां जाते झुण्डों के झुण्ड स्त्री-पुरुष शिष्य हो जाते। बुद्ध के पुत्र ने भी शिष्यत्व लाभ किया। प्रचार करते हुए ४६वां चातुर्मास्य लगते ही उनका शरीर रोगी हो गया और आखिर हिरण्यवती-नदी के किनारे मल्लों की राजधानी कुशीनगर के पास साल के दो पेड़ों

के नीचे उन्हों ने ८० वर्ष की अवस्था में निर्वाणपद प्राप्त किया।

बौद्ध-धर्म (२)

जिस धर्म को, जिस वाद को, या जिस मत को, बुद्ध ने चलाया, उसे बौद्ध-धर्म कहते हैं वह एक प्रकार का साम्यवादी धर्म है। जो बातें आज-कल के साम्यवाद में पाई जाती हैं, करीब-करीब वही बातें बौद्ध-धर्म में पाई जाती हैं। कहने को फर्क है तो सिर्फ यह कि इसका आधार आर्थिक है और उसका आधार प्रत्यक्ष-रूपेण आर्थिक न हो कर आध्यात्मिक है। यह समय की बात है। बुद्ध के समय हमारे देश में ही नहीं, संसार भर में धार्मिक-सत्ता ही सर्वोपरि सत्ता थी और वही खराब थी। उसका ठेका एक समाज विशेष के हाथ में था और वह समाज विशेष; अपने मतलब के लिए सारे मानव-समाज को मूर्ख बना कर लूट रहा था। बुद्ध ने धर्म के ठेकेदारों के हाथ से सत्ता छीन कर सर्व-साधारण के हाथ में दे दी और सब को समानाधिकार देकर, श्रेणी-भेद या वर्ण-व्यवस्था का अन्त कर दिया।

मोटी-मोटी बातें

बौद्ध-धर्म में जातिगत ऊंच-नीच का का कोई भाव नहीं है। ऊंच-नीच का भाव है, कर्मों के अनुसार। जो अच्छे कर्म करता

है, वह उच्च है, जो नीच कर्म करता है, वह नीच है। वहाँ "पूजिय विप्र सील गुण हीना, नहिंन सूद्र गुण ज्ञान प्रवीना" वाला सिद्धान्त मान्य नहीं है। वहां ईश्वर और वेदों के लिए भी कोई स्थान नहीं है। आत्मा को अनित्य माना जाता है। किसी भी ग्रन्थ को स्वतः प्रमाण नहीं माना जाता और जीवन-प्रवाह को इस शरीर के पूर्व और पश्चात् भी माना जाता है।

बौद्ध-धर्म के अनुसार, मनुष्य को खोटे रास्ते पर ले जाने वाला मन ही है। अगर मनुष्य मन पर काबू पाले तो खोटे रास्ते पर जा ही नहीं सकता। मन को पवित्र रखने के लिए जीव-हिन्सा न करना, किसी बेगाने की चीज को बिना उसके मालिक की आज्ञा के पाने का ख्याल तक भी न लाना, झूठ न बोलना, व्यभिचार न करना और शराब न पीना—यह पांच साधन बतलाए गये हैं। वहाँ सन्यासी और गृहस्थी में कोई भेद नहीं है। मन की पवित्रता और विषयों से अनासक्ति—गृहस्थी को संन्यासी से भी ऊँचे पहुंचा देती है।

जीवन दुःख-मूलक है। दुःख का कारण अविद्या है। अविद्या चार आर्यसत्यों के अभाव से होती है। उनके न जानने से होती है। वह चार आर्यसत्य यह हैं:—(१) जन्म दुःख है, बुढापा दुःख है, रोग दुःख है और मौत दुःख है। अप्रिय का मिलना दुःख है, प्रिय का बिछुड़ना दुःख है। (२) तृष्णा ही से दुःख की उत्पत्ति होती है। (३) तृष्णा के नाश से ही दुःख का नाश होता है और (४) इस दुःख की निवृत्ति का अष्टांगिक मार्ग ही उपाय है। वह इस प्रकार है—(१) ठीक दृष्टि (२) ठीक संकल्प (३) ठीक वाणी (४) ठीक कर्म (५) ठीक जीविका (६) ठीक प्रयत्न (७) ठीक स्मृति (८) ठीक समाधि।

बौद्ध-धर्म में न तो मनुष्य को अधिक आराममें ही पड़े रहना बतलाया है और न अधिक कष्टकर जीवन बिताने को ही कहा है, बल्कि इन दोनों के बीच में रह कर चलने को कहा है अर्थात् वहां अति ऐश्वर्य-भोग भी वर्जित है और अति कठोर-साधना भी वर्जित है। मर्यादा से ही सब कुछ करना कहा है।

वासना और तृष्णा पर काबू पाने का उपदेश, यद्यपि प्रत्यक्ष रूपेण आध्यत्मिक है, पर असली मतलब उसका शोषण को ही रोकना है। जब हमारा मन पवित्र होगा, हमारी इच्छाएं होंगी ही नहीं तो हम किसी का शोषण क्यों करेंगे? अतएव बुद्ध के उपदेशों का सार वही है, जो ऊपर कहा है—साम्यवादी।

भिक्षुणी-संघ (३)

भिक्षुणी-संघ—बौद्ध-धर्म में स्त्रियों को घर बाहर छोड़ कर सन्यासी जीवन बिताने के लिये कहा है। उसके नियम इतने अच्छे और सुन्दर हैं कि स्त्रियें हर प्रकार से सुरक्षित रहती हुई, बड़ी सरलता से अपना जीवन निभा जाती हैं।

भिक्षुणी-संघ की स्थापना अपनी विमाता महाप्रजावती की सिफारिश पर स्वयं बुद्ध ने की थी। बुद्ध के समय की कुछ एक प्रसिद्ध भिक्षुणियों का यहाँ संक्षेप से परिचय दिया जाता है:—

(१) सुप्रिया—यह अनाथ पिण्डक की कन्या थी। एक बार श्रीवस्ती में बड़ा भारी अकाल पड़ा। इसने घर-घर से अन्न और धन संग्रह करके प्राणी मात्र की सहायता की।

(२) नन्दा—इसका जन्म शाक्य-राज-वंश में हुआ था। यह बड़ी सुन्दर रमणी थी। राज-वंश के अन्य स्त्री-पुरुषों को संसार-त्याग करते देख, इसने भी संसार-त्याग किया, पर इसके मन से सुन्दरता का गर्व न गया। भगवान् बुद्ध ने इसे उपदेश देते हुए कहा—"इस देह में कोई सार-पदार्थ नहीं है। यह हाड़ मांस का बना हुआ एक पुतला है। यह मौत और नाश के आधीन है"। नतीजा यह हुआ कि नन्दा का नशा उतर गया और वह एक आदर्श भिक्षुणी बन गई।

(३) विरूपा—यह महाराजा प्रसेनजित की कन्या थी। कुरूपा होने के कारण कोई इसका आदर न करता था। बड़ी

दुःखी रहती थी। बुद्ध ने उपदेश देकर इसको शान्ति प्रदान की। यह भी बड़ी आदर्श भिक्षुणी हुई।

(४) रोहिणी—यह एक ब्राह्मण परिवार की सुन्दर कन्या थी। बड़ी रूपवती थी। इसने चढ़ती जवानी में बुद्ध का आश्रय लेकर अर्हत्व लाभ किया।

(५) सुप्रभा—यह श्रीवस्ती के एक धनाढ्य की परम रूपवती कन्या थी। इसको विवाहने के लिये कई राजकुमार उत्सुक थे। एक साथ सब का आग्रह देख कर सुप्रभा का पिता बड़ा असमंजस में पड़ा। करे तो क्या करे। यह देख कर इस कन्या ने पिता को स्वयंवर रचाने के लिये कहा। जब स्वयंवर रचा गया और उम्मीदवार राजकुमार सुप्रभा की प्रतीक्षा करने लगे तो सहसा सुप्रभा कषाय-वस्त्र पहिने सब को चकित करती हुई सभा-मंडप में आगई और प्रणाम करके देखते-देखते भिक्षुणी संघ में चली गई। भिक्षुणी बन कर यह एक महान भिक्षुणी बनी।

(६) आम्रपाली—यह भिक्षुणी तो नहीं हुई, पर भिक्षुणियों की सेवा करने के कारण भिक्षुणियों के साथ इसका भी नाम लिया जाता है। यह वैशाली की परम रूपवती वेश्या थी। बुद्ध के उपदेश से इसका जीवन पलट गया। यह एक महात्मा स्त्री होगई।

भगवान् महावीर (४)

एक समय भारत-वर्ष को हिंसावाद रूढ़ीवाद और घोर अन्ध विश्वासों में फंसे हुए को जिन दो महापुरुषों ने निकाल कर दया, धर्म और परोपकारमय जीवन में ला खड़ा किया, उन में एक थे भगवान् गौतम बुद्ध और दूसरे थे भगवान् महावीर। भगवान् महावीर का एक नाम बर्द्धमान भी था।

बर्द्धमान महाराज का जन्म उत्तरीय बिहार के एक गण-राज्य की राजधानी कुण्डग्राम में, ईस्वी सन् से करीब ६ सौ वर्ष पहिले हुआ था। तिथि चैत्र शु० १३ थी। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशलादेवी था। सिद्धार्थ, इक्ष्वाकु-वंशान्तर्गत, ज्ञात-वंश के क्षत्रिय राजा थे। त्रिशला वैशाली के राजा चेटक की पुत्री थी।

भगवान् महावीर का लालन-पालन बड़े राजसी ठाठ में हुआ। उचित समय पर क्षत्रियोचित सब शिक्षा-दीक्षा भी मिली और युवा होने पर समरवीर नाम के राजा की कन्या यशोदा से विवाह भी हो गया, पर देश की धार्मिक और सामाजिक दुरावस्था ने महावीर का मन संसार की ओर नहीं लगने दिया। वह सदा ही संसार को अज्ञान के घोर अन्धकार से निकाल कर ज्ञान के दिव्यप्रकाश में लाने की धुन में लगे रहे। उन के घर प्रिय दर्शना नाम की एक कन्या भी हुई, जिसका विवाह जमाली नाम के एक राजकमार से हुआ था। वही जमाली एक समय भगवान् महावीर का शिष्य हुआ और

फिर आगे चल कर उन्हीं के विरुद्ध एक नये मत का संस्थापक बना।

२८ वर्ष की अवस्था होने तक महावीर स्वामी के माता-पिता का देहान्त हो गया। अब आपने घर-त्याग का दृढ़ निश्चय कर लिया पर बड़े भाई नन्दिवर्द्धन के आग्रह से दो वर्ष तक और ठहर गए। उसके बाद ३० वर्ष की आयु में सब से नाता तोड़ जंगल में चले गए। वह दिन मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी का था। भिक्षु बनते समय जो वस्त्र आपने पहने हुए थे, १३ मास तक वह बिल्कुल जर्जरित हो गये और फट कर स्वयं ही शरीर से उतर गए। उसके बाद आपने कोई वस्त्र धारण नहीं किया।

१२॥ वर्ष तक घोर तपस्या करके महावीर स्वामी पूर्ण ज्ञानी और वीतराग हो गए। अनेक सिद्धियाँ भी उन्हें प्राप्त हो गईं। अब आपने संसार के उद्धार का बीड़ा उठाया। जन जन तक अपना नव-सन्देश पहुंचाना शुरू किया। पुरोहित-धर्म से त्रसित जनता ने आपको जीवन-दाता जानकर आपके सन्देश को बड़े चाव से सुना। सब वर्णों के लोगों ने आपका शिष्यत्व स्वीकार किया। ७२ वर्ष की आयु में कार्तिक अमावस्या को पावा में आप निर्वाण पद पा गए।

बुद्ध की तरह महावीर के मत में भी ईश्वर और वेदों के लिए कोई जगह नहीं है। वहां आवागमन और कर्मों का फल मान्य है। जीवन को पवित्र और संयमी रख कर प्रत्येकप्राणी मोक्ष पा सकता है। स्त्रियों के लिये भी मोक्ष का द्वार खुला है।

शंकराचार्य (५)

समय पाकर बौद्ध-धर्म अपने असली रूप में न रहा। उस में कई सम्प्रदाय पैदा हो गये। चीनी-यात्री इत्सिंग के समय १८ भेद हो चुके थे। बाद में और अनेक भेद हुए। पहिले बौद्ध-साधु बड़े त्यागी और सदाचारी होते थे, पर अब वह वैसे न रहे थे। उन में बाह्य-आडम्बर बहुत आ गया था। अपने स्वामी बृहद्रथ को मार कर सेनापति पुष्यमित्र ने जब से मौर्य्य-साम्राज्य पर अधिकार कर पुनः ब्राह्मण धर्म की सत्ता स्थापित की थी, असल में बौद्ध धर्म का ह्रास तभी से शुरू हो गया था। वह अपने असली रूप को त्याग कर ब्राह्मण-धर्मी-रूप में बदलने लग गया था। उधर ब्राह्मण-धर्म में भी बौद्ध-धर्म की कई विशेषताएं आ मिलने से वह भी बौद्ध-धर्म से कोई ज्यादा दूर न रह गया था। दोनों धर्म नजदीक-नजदीक हो गये थे। आठवीं नौवीं सदी का बौद्ध-धर्म ऐसा ही धर्म है, जिस पर गर्व नहीं किया जा सकता। वह निश्चय ही शोचनीय-अवस्था में था। शंकराचार्य इसी समय में हुए।

शंकराचार्य का जन्म, ७८८ ई० में मालाबार (केरल) में एक ब्राह्मण के घर हुआ। पिता का नाम शिवगुरू था। वह शंकर के बचपन में ही चल बसे, इस लिये शंकर के लालन-पालन का भार उन की माता पर आ पड़ा। बहुत छोटी अवस्था में ही शंकराचार्य ने अनेक ग्रन्थ पढ़ लिये और वह एक भारी विद्वान् हो गए। कहते हैं कि एक बार शंकराचार्य अपनी माता

के साथ नदी में स्नान करने गये। वहाँ एक ऐसी घटना हो गई कि विवश माता को इन्हें संन्यास लेने की आज्ञा देनी पड़ी। यह घर छोड़ कर संन्यासी हो गये। उस समय इनकी अवस्था आठ वर्ष की थी। गोविन्द संन्यासी ने इन्हें संन्यास-धर्म में दीक्षित किया। गौडपाद इनके शिक्षा-गुरु थे, ऐसा कहते हैं—यद्यपि गौडपाद का समय इनसे बहुत पहिले निश्चित होता है। गौडपाद का एक दर्शन-ग्रन्थ आगम-शास्त्र या माण्डूक्य-कारिका है। उसे लिखने का उद्देश्य, बौद्ध-दर्शन का पलड़ा भारी रखते हुए, उपनिषद् से उसका सम्बन्ध जोड़ना था। वह बौद्ध न होते हुए भी, बुद्ध के प्रति आदर और श्रद्धा रखते थे। अपने ग्रन्थ में उन्होंने कई बार बुद्ध को स्मरण और नम्न किया है।

शंकराचार्य ने घूम-घूम कर सारे भारतवर्ष में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। उनके विचारों पर बौद्ध-दार्शनिक वसुबन्धु की छाप थी, इसी लिये वह "प्रच्छन्न बौद्ध" (छिपे हुए बौद्ध) कहलाते थे। जिस आन्दोलन को चलाने वह निकले, वह उन से पहिले कुमारिल आदि द्वारा चल रहा था। अब उनके आ जाने से उसे बहुत बल मिला। 'शंकरदिग्वय' में कुमारिल के द्वारा शंकर को एक श्लोक कहलाया गया है। उसका मतलब है—'वेदार्थ से विमुख बौद्धों को नष्ट करने के लिये आप गुह (कार्तिक) रूप में उत्पन्न हुए हैं,' इस से पता चलता है कि शंकराचार्य कितने जबरदस्त प्रचारक और किस कदर बौद्धों को नष्ट करने में संलग्न थे।

यद्यपि शंकर 'दिग्विजय' आदि में शंकराचार्य के अनेक शास्त्रार्थों का वर्णन आता है, पर शंकरके समकालीन शान्त रक्षित

ही नहीं, उनके बाद के कमलशील (८५० ई०) और जितारि (१००० ई०) जैसे महान् दार्शनिक, उनके बारे में कुछ नहीं जानते, यह आश्चर्य की बात है।

जो भी हो, अपने बत्तीस वर्ष के छोटे से जीवन में शंकराचार्य ने बहुत कुछ किया। वेदान्त और दस प्रधान उपनिषदों पर सुन्दर और विचार-पूर्ण भाष्य लिखे और भारत के चार कोनों में चार मठ स्थापित किये—एक केरल में शृंगेरी-मठ, दूसरा गढवाल में बद्रिकाश्रम, तीसरा पुरी में और चौथा द्वारिका में। आज भी इन मठों के मठाधीश, आमतौर पर अच्छे विद्वान् होते हैं। पुरी के भूतपूर्व शंकराचार्य, भारती कृष्णतीर्थ, एक समय भारत के राजनीतिक-क्षेत्र में भी प्रसिद्ध हो चुके हैं।

दो-तीन सौ वर्ष तक शंकर के विचार बराबर प्रचारित होते रहे, पर आगे चल कर कुछ रुक गये। क्यों कि वह प्रच्छन्न-बौद्ध थे, इस लिये आस्तिक लोग अनुभव करने लगे कि उनकी पद्धति में भक्ति-भाव नहीं है। ११वीं सदी में श्री रामानुज हुए, सबसे पहले उन्हों ने विरोधी आवाज बुलन्द की। अब शकर के मठों में भी भक्ति होती है।

समर्थ गुरु रामदास (६)

बिखरी हुई मराठा-शक्ति को एकत्र करके, उसका सदुपयोग करने वाले छत्रपति शिवाजी के गुरु—समर्थ गुरु रामदास, अपने समय के बहुत ऊंचे महात्मा हुए हैं। महाराष्ट्र के सन्तों में ही नहीं, भारत भर के सन्तों में उनका स्थान ऊंचा है।

सम्वत् १६६२ की चैत्र शुक्ला नवमी को समर्थ गुरु रामदास का जन्म हुआ। आपके पिता का नाम सूर्यजी पन्त और माता का नाम रेणुका बाई था। आपका पहिला नाम नारायण था।

नारायण बचपन में बड़े ही ऊधमी थे। खेल-कूद में खूब लगे रहते थे, पर साथ ही इसके पढ़ने-लिखने में भी खासी रुचि रखते थे। महान् प्रतिभा-सम्पन्न होने के कारण, थोड़े समय में ही तमाम वेद-शास्त्रों का अध्ययन कर गये।

पाँच वर्ष की अवस्था में नारायण का उपनयन-संस्कार हुआ और १२ वर्ष की अवस्था में विवाह होने लगा। विवाह-मन्त्र उच्चारण करते हुए उन्हें तीन बार "सावधान" "सावधान" शब्द उच्चारण करना पड़ा। यह शब्द कहते ही उन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान होगया और भाग निकले। ऐसे भागे कि १२ वर्ष तक किसी को पता ही न लगा कि कहाँ गये। इन १२ वर्षों में आप नाम-स्मरण, पुरश्चरन और तीर्थाटन करते रहे। तीर्थाटन खत्म करके समर्थ गुरु रामदास गोदावरी की परिक्रमा करने निकले। रास्ते में एक दिन पैठण में कीर्तन किया और एक अद्भुत चमत्कार दिखाया। वहीं एक आदमी ने उन्हें माता की याद दिलाई, जो इनके वियोग में रो-रो कर अन्धी हो चुकी

थी। यह फौरन माता के दर्शनार्थ गये। दर्शन किया, उसे पुनः नेत्र-ज्योति दे, कपिल-गीता सुनाई और आज्ञा लेकर फिर गोदावरी की परिक्रमा में लग गये।

१२ वर्ष तक तपस्या और १२ वर्ष तक तीर्थाटन करने के बाद, संवत् १७०१ के वैशाख मास में आप कृष्णा-नदी के तट पर आये और माहुली-क्षेत्र में रहने लगे। यहाँ आप काफी देर तक रहे। यहीं आपके पास संत तुकाराम आये और दूसरे भी अनेक महात्मा आये।

माहुली क्षेत्र से चल कर घूमते-फिरते समर्थ, संवत् १७०५ में चाफल के समीप शिंगणवाडी में पहुंचे। वहीं आपकी प्रशंसा सुन कर छत्रपति शिवाजी आपके दर्शनार्थ आये और आप के शिष्य हुए। आपने उन्हें मन्त्रोपदेश दिया और 'दासबोध' के तेरहवें दर्शक का लघुबोध नामक छठवां समास, अद्वैत-ज्ञान बताने के लिये सुनाया।

समर्थ गुरु रामदास एक जगह जम कर नहीं बैठते थे। देशाटन और तीर्थाटन करते हुए जहाँ-तहाँ उपदेश देते रहते थे। कई जगह आपने मठ स्थापित किए और उन के परिचालनार्थ एक-एक अधिकारी नियत किया।

छत्रपति शिवा जी, समर्थ रामदास के सदा दर्शन करते रहना चाहते थे, इस लिये आप उनका आग्रह मान कर सितारा के पास सज्जनगढ़ के किले में रहने लगे।

संवत १७१२ में जब शिवा जी सितारा में थे तो एक दिन भिक्षा मांगते हुए समर्थ, शिवा जी के राजद्वार पर पहुंचे। शिवा

जी फौरन महिलों से दौड़े आये और उन्हें साष्टांग प्रणाम कर, भीतर ले गये। वहां उन्होंने एक पत्र पर यह लिख कर कि आज तक जो कुछ मैंने अर्जित किया है—राज-पाट सब—आपके श्री चरणोंमें समर्पित है, भेंटकर दिया। यह देखकर हंसते हुए समर्थ ने कहा'—बेटा! हमें राज्य नहीं चाहिये। हम राज्य लेकर क्या करेंगे। राज्य तूही कर। तब कोई और चारा न देख, शिवा जी ने कहा, 'अच्छा तो गुरुवर! अपनी चरण-पादुका मुझे दे दीजिये, उन्हीं को सिंहासन पर रख कर मैं मन्त्री-रूप में राजकार्य चलाऊंगा। गुरु जी ने पादुका देदीं। शिवाजी ने उसी दिन से राज्य का झंडा भगवा कर दिया।

लगातार कई वर्ष तक देश और जाति की भलाई करने के बाद, माघ कृष्ण ६ संवत १७३६ में समर्थ गुरु रामदास संसार त्याग गए। उनके अनेक मठ हैं, जिनसे सदा जनता का कल्याण होता रहता है। यह मठ धार्मिक होते हुए भी, राजनीति में पूरा हिस्सा लेते थे और इनका राजनीतिक संगठन भी बड़ा जबरदस्त था। औरंगजेब के चंगुल में फंसे हुए निःसहाय शिवाजी का देहली से भाग कर सुदूर महाराष्ट्र तक पहुंच जाना इन मठों के सुदृढ़ राजनीतिक संगठन का सुन्दर प्रमाण है।

ऋषि दयानन्द (७)

पहिले तो मुसलमान ही हिन्दुओं की कमजोरी से लाभ उठाते थे, अब ईसाई भी उठाने लगे। दोनों अपनी-अपनी जगह छीना-झपटी करने लगे। दोनों प्रत्येक उचितानुचित उपाय से हिन्दुओं को निगलने लगे। स्वामी दयानन्द जी सरस्वती, ऐसे ही आड़े समय में पैदा हुए और हिन्दु-जाति के कर्णधार बने।

स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का जन्म 'गुजरात' प्रान्त के मोरवी राज्य में टंकरा नाम के एक गांव में, संवत् १८८१ वि० में हुआ। बाल्यकाल में आपका नाम मूलशङ्कर, ब्रह्मचर्यावस्था में शुद्ध-चैतन्य और संन्यासाश्रम में स्वामी दयानन्द प्रसिद्ध हुआ। बचपन से ही आपकी बुद्धि प्रखर और तार्किक थी। विद्याकी ओर भी शुरू से ही आपकी अभिरुचि थी। शिवरात्री की एक घटना ने आपको विशेष आकर्षित किया और आप सच्चे शिवकी तलाश में निकल पड़े। आपके पिता जी आपकी तलाश में निकल पड़े। एक स्थान पर आपकी उन से भेंट भी हो गई और उन्होंने कोशिश भी की कि आपको घर ले चलें, पर आप तैयार न हुए। आप सांसारिक बन्धनों में पड़ना नहीं चाहते थे और वह डालना चाहते थे, इस लिये आप फिर चुपके से भाग निकले। वर्षों तक तरह-तरह के कष्ट उठाते, सैंकड़ों और हजारों मील पैदल सफर करते, जंगलों और पहाड़ों में घूमते रहे। कभी मिल जाता तो खा लेते, अन्यथा भूखे ही दिन बिता देते। कपड़ा है तो पहिन लिया, नहीं तो न सही। अनेक साधु महात्माओं और पण्डितों

से मिले पर किसी ने भी ज्ञान-पिपासा शान्त न की। वह उल्टी बढ़ती ही गई। आखिर पता लगा कि मथुरा में एक प्रज्ञाचक्षु संन्यासी हैं—स्वामी विरजानन्द जी। वह वेदों के बड़े पण्डित हैं। आप उन तक पहुंचे और अपने मनोभाव उनके साम्हने रक्खे। वह भी किसी ऐसे ही शिष्य की तलाश में थे। उन्होंने आज्ञा दी कि जो पुस्तकें पास हैं, उनको यमुना में बहा दो। आप ने ऐसा ही किया और जबानी पढ़ने लगे। केवल अढ़ाई वर्ष में ही आपने उन से वह सारी विद्या सीख ली, जो उन के पास थी और इस प्रकार आप एक महान् पण्डित हो गए। अब गुरु की आज्ञानुसार आप धर्म-प्रचार को निकले। इस समय आपकी अवस्था केवल ३६ वर्ष की थी। जहां-जहां भी आप गये, कोई विरोधी आपके सामने ठहर न सका। बड़े-बड़े पण्डित, मौलवी और पादरी आए, पर क्या मजाल कि कोई आपके युक्ति-युक्त प्रश्नों का उत्तर दे सके। कोई आपके प्रबल प्रमाणों का खण्डन कर सके। हरिद्वार के कुम्भ पर लाखों की भीड़ में आपने बड़ी निर्भयता-पूर्वक अपने सिद्धान्तों को रक्खा। काशी में बड़े-बड़े दिग्गज पण्डितों को अपनी विद्या-बुद्धि से चकित किया। बड़े-बड़े महारथियों को शास्त्रार्थ में हराया। नतीजा यह हुआ कि झुण्डों के झुण्ड लोगों के आपके अनुयायी बन गए। वैदिक-धर्म के झंडे तले आ गए। यह देख कर विरोधियों को बड़ी हैरानी हुई। उनका मारना, पीटना, पत्थर-बरसाना और यहाँ तक कि एक वेश्या को साम्हने लाकर स्वामी जी को बदनाम करना भी व्यर्थ गया। अब उन्होंने एक और घृणित चाल चली। स्वामी जी के रसोइये जगन्नाथ से मिल कर स्वामी जी को विष दे दिया। जब स्वामी जी को इस बातका पता लगा तो उन्होने पास

से रुपये देकर उस नीच रसोइये को भगा दिया ताकि उसे कुछ नुकसान न पहुंचे। विष के प्रकोप से कार्तिक अमावस्या १९४० को स्वामी जी का देहान्त हो गया। स्वामी जी ने वैदिक-धर्म के साथ-साथ हिन्दी भाषा की भी बड़ी सेवा की। गुजराती होते हुए भी आपने सब ग्रन्थ हिन्दी में लिखे।

स्वामी जो जहां तत्कालीन धार्मिक-स्थिति से असन्तुष्ट थे और उस में यथोचित सुधार चाहते थे, वहाँ राजनीतिक स्थिति से भी सन्तुष्ट न थे और उसमें भी यथोचित सुधार चाहते थे। आप राजतन्त्र के पूरे पक्षपाती थे और पुरानी राज्यव्यवस्था फिर से स्थापित करना चाहते थे। आपके लिखे प्रत्येक ग्रन्थ में से, चाहे वह किसी किस्म का है, यह बात पूरी तरह से प्रमाणित होती है। अपनी पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' में छटा समुल्लास सारा इसी किस्म का लिखा हुआ है। उसमें से कुछ शब्द उद्धृत हैं।

'अपनी सर्व समर्थ से धर्मात्माओं की' चाहे वह महा अनाथ, निर्बल, गुण रहित क्यों न हों, रक्षा, उन्नति प्रिय-आचरण करे। अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महा बलवान और विद्वान् भी हो, उसका नाश अवनति, अप्रियाचरण, सदा करता रहे।

वीर-मणि-माला

वीरमणि-माला के
८ लेख

चन्द्रगुप्त मौर्य (१)

ईस्वी सन् से ७०० वर्ष पहले अर्बुद-गिरि पर ब्राह्मणों ने एक महान् यज्ञ करके क्षत्रियों की चार जातियाँ बनाईं। उनमें प्रमार जति पहले नम्बर पर थी। प्रमार की ३५ शाखाओं में से प्रधान और लोक-विश्रुत-शाखा मौर्य्य हुई। मौर्य्यों की पहली राजधानी पिप्पली-कानन थी। पिप्पली-कानन नैपाल की सीमा पर बस्ती जिले में है। चन्द्रगुप्त इसी मौर्य्य-कुल में और पिप्पली कानन में पैदा हुआ था। यह गलत है कि वह महानन्द का पुत्र था और उसकी मुरा नाम की दासी से जो नाइन थी, पैदा हुआ था। इस गलती के पहले जिम्मेवार यूनानी हैं। मौर्य्य, शुद्ध संस्कृत-शब्द है। मुरासे मौर्य्य नहीं बना। पुराणों में कहीं चन्द्र गुप्त को महापद्म का पुत्र नहीं लिखा।

चन्द्रगुप्त अभी बालक था। उसका पिता जोकि एक सेना-पति था, मगध-नरेश की कैद में था। एक बार चाणक्य, पिप्पली कानन में गए। बालक चन्द्रगुप्त का भविष्य परमोज्वल जान कर उन्होंने उसकी माता के साथ उसे मगध-नरेश नन्द के यहाँ

भेज दिया। आप शकटार के साथ मिल कर नन्द-वंश का नाश करने में लगे हुए थे। कुछ देर बाद, चन्द्रगुप्त भी नन्द का कोपभाजन बन कर उसमें आ मिला और मगध से भागकर सीमा-प्रान्त में चला गया। यह ३२८-२७ ई० पू० की बात है। जिस समय चन्द्रगुप्त तक्षशिला में गया, उस समय वहां सिकन्दर आया हुआ था। दोनों की भेंट हुई। चन्द्रगुप्त, सिकन्दर से नाराज होकर पहाड़ी राजाओं के पास गया। सिकन्दर दो वर्ष तक यहां रहा। तब तक चन्द्रगुप्त बराबर उसके विरुद्ध प्रचार करता रहा। सिकन्दर के बाद, उसका प्रतिनिधि फिल्प यहाँ आया पर अधिक देर रह न सका। देश, ग्रीक-सत्ता से मुक्त हो गया। अब चन्द्रगुप्त ने पर्वतेश्वर को साथ लेकर मगध पर चढ़ाई करदी। चन्द्रगुप्त की सेना में ग्रीक लोग भी थे। १५ दिन के घेरे के बाद मगध-नरेश भाग गया और फिर किसी प्रकार मारा भी गया। पर्वतेश्वर ने चन्द्रगुप्त के साथ विश्वास-घात किया। उसका बदला लेने के लिये चाणक्य ने विषकन्या द्वारा पर्वतेश्वर को मार डाला। अपनी नीति से मगध में शान्ति स्थापित करके चन्द्रगुप्त को मगध का स्वामी बनाया। यह ३२१ ई० पू० की बात है। ३०६ ई० पू० में सिकन्दर का सेनापति सेल्युकस भारत पर चढ़ आया। वही अब ग्रीकों का स्वामी था। चन्द्रगुप्त से हार गया। हार कर उसने सन्धि करली। सन्धि को पक्का करने के लिये उसने अपनी कन्या चन्द्रगुप्त को विवाह दी। दहेज में काबुल, हिरात और मरकाना, यह तीन इलाके दिये। चन्द्रगुप्त ने ५०० हाथी अपने श्वसुर को दिये।

चन्द्रगुप्त का राज्य पाँडुचेरी और करानूर से हिमालय की तराई तक, तथा सतलुज से आसाम तक था। राजधानी गंगा

और सोननद के तट पर पाटली-पुत्र थी। पाटली-पुत्र की दशा उस समय बहुत अच्छी थी। शासन प्रबन्ध ६ भागों में बंटा हुआ था। सैनिक-शक्ति बहुत थी। देश की दशा भी बहुत उत्तम थी। वर्ष में दो बार अन्न काटा जाता था। दस्तकारी भी बहुत ऊंचे दर्जे पर थी। ब्याज का लेन-देन होता ही न था। मुकद्दमे बाजी भी नहीं होती थी। विवाह, एक जोड़ा बहल देकर होता था। लोग खुशहाल थे। स्त्रियों की दशा बहुत उन्नत थी। लोग कभी शराब नहीं पीते थे। सैल्युकस की ओर से उसका प्रतिनिधि बन कर एक यूनानी, मेगस्थनीज ६ वर्ष तक चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा था। उसने भारत की दशा का बहुत अच्छा वर्णन किया है।

चन्द्रगुप्त के बाद, उसका पुत्र बिन्दुसार गद्दी पर बैठा। उसने पचीस वर्ष राज्य किया। उसका पुत्र अशोक हुआ। अशोक ने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर, बौद्ध-धर्म का बड़ा प्रचार किया। वह स्वयं अढाई वर्ष तक बौद्ध-भिक्षु रहा। बौद्ध-धर्म में इस बात की इजाजत है कि जब चाहे भिक्षु, गृहस्थ बन जाय। अशोक के बाद कई कारणों से मौर्य्य-साम्राज्य शिथिल होना शुरू हो गया और आखिर उसके अन्तिम राजा बृहद्र-थ को, उसके सेनापति पुष्यमित्र ने मार कर मगध की गद्दी पर खुद अधिकार कर लिया और इस प्रकार मौर्य्य-साम्राज्य का अन्त हो गया।

शिवाजी (२)

विन्ध्याचल-पहाड़ भारत को दो बड़े भागों बांटता है। उत्तरी भारत और दक्षिणी-भारत। दक्षिणी-भारत अपने प्राकृतिक और भौगोलिक कारणों से मुसलमान आक्रमण कारियों द्वारा ज्यादा पददलित न हो सका। वहाँ के लोगों में स्वतन्त्रता का बीज बराबर बना रहा। वह लोग पराधीन होते हुए भी, स्वाधीनता का सुख बराबर भोगते रहे।

शिवाजी के कार्य्य आरम्भ करने से पहले मराठों के आठ वंश बहुत प्रसिद्ध थे। इन्ही में एक भोंसला वंश था। शिवाजी उसी में पैदा हुए। भोंसले, सीसोदिया क्षत्रियों में से थे। शिवाजी का जन्म १६२८ ई० शिवनेर के किले में हुआ, जब कि उनकी माता जीजीबाई वहां कैद थी। शिवाजी के पिता का नाम शाहजी था। जीजीबाई बचपन में ही शिवाजी को मातृ-भूमि की सेवा का पाठ पढ़ाने लगी। कैद से छूटने के बाद जीजीबाई शिवा जी को लेकर पूना में आ गई। यहां उनकी जगीर का गुमास्ता कोणदेव था। उसने बालक शिवा जी को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया और क्षत्रीयोचित शिक्षा दिलाई। युवा होने पर शिवा जी अपने कुछ साथियों को साथ लेकर मैदान में निकले। सब से पहिले १६४६ ई० में उन्होंने तोरण को हस्तगत किया। वहां से मिले धन से १६४७ में 'रायगढ़' का किला बनवाया। इस बीच में कोणदेव चल बसे फिर एक-दो और स्थान हथियाने के बाद, कुण्डाने का किला लेकर उसका नाम सिंहगढ़ रक्खा।

फिर और किले लिये। बीजापुर का सुलतान कई बार बिगड़ा और राजी हुआ। १६५६ में उसने एक सेना देकर अफजल खाँ को भेजा। वह धोखे से शिवाजी को मारना चाहता था। शिवा जी ने उसके दूत गोपीनाथ से यह भेद जान लिया और उसे ही मार डाला। १६६१ में सुल्तान खुद शिवा जी से लड़ने आया पर आखिर उसे शिवा जी से सन्धि करलेनी पड़ी। शिवाजी का राज कल्याण से गोआ और पूना से मिरज तक फैल गया। अब औरंगजेब डरा। शाइस्तखां के भाग आने के पश्चात् उस ने जयसिंह को एक भारी सेना देकर लड़ने के लिये भेजा। आखिर सन्धि हो गई। उस सन्धि के मुताबिक शिवा जी देहली गए। औरंगजेब ने सन्धि की शर्तों का ध्यान न करते हुए धोखे से उन्हें कैद कर लिया, पर वह बहादुर वहां से किसी प्रकार भाग ही निकला और स्वदेश आकर १६७४ ई० में उस ने रायगढ़ के किले में विधि पूर्वक राज्याभिषेक कराया। १६८० की ५ अप्रैल को सुरपुर सिधार गया।

शिवा जी के सामने सब से बड़ा आदर्श था, मातृभूमि की सेवा, गो और ब्राह्मण की सेवा। इसके लिये वह बड़ी से बड़ी कुरबानी करने को भी सदा तैयार रहते थे। शाहजी बीजापुर दरबार में नौकर थे। सुल्तान ने शाह.जी को कैद तक कर लिया पर शिवा जी ने कुछ परवाह न की। शिवाजी में आत्म-संयम भी विशेष था। इसके कई उदाहरण मिलते हैं। क्षमा का गुण भी अपार था। शासन करने की योग्यता भी भरपूर थी। शासन प्रबन्ध के लिये उन्होंने अपने राज्य को कई भागों में बांट रक्खा था। जिस भूमि पर उनकी निजि अमलदारी थी, उसका नाम स्वराज्य था और जिस से वह 'सरदेशमुखी और चौथ' (एक

प्रकार के टैक्स) लेते थे, उसका नाम मुगलिया था। सारे राज-कोष-प्रबन्ध के लिये उन्होंने आठ मन्त्रियों की एक सभा बना रक्खी थी जिसे वह अष्टप्रधान कहते थे। शिवाजी का सारा राज्य १४ सूबों में विभक्त था। प्रत्येक पर एक-एक सूबेदार होता था। मालगुजारी का प्रबन्ध टोडरमल के प्रबन्ध जैसा था। सेना का प्रबन्ध भी बहुत उत्तम था। काफी शक्तिशाली सेना थी। स्थल सेना के अतिरिक्त, जल-सेना भी थी। गुप्तचर-विभाग भी था। सेना को वेतन नकद और समय पर मिलता था। वर्ष में आठ महीने का वेतन 'सरदेश मुखी' और 'चौथ' से मिलता था। कहते हैं कि इन दोनों कामों की उगाही बहुत सख्ती से होती थी। जो भी हो, शिवा जी का शासन और चरित्र उच्च कोटि का था।

शिवा जी के बाद, शिवाजी का स्थापित मराठा-साम्राज्य काफी देर तक रहा। पेशवाओं ने बड़ी योग्यता से उसे चलाया ही नहीं, बल्कि वृद्धि को भी पहुंचाया। मराठा-साम्राज्य की सीमा भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गई। उसका प्रभुत्व, सारे भारत पर छा गया। आखिर पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठा-साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। उसकी शक्ति टूट गई। मराठों के दिल से स्वातन्त्र्य-प्रेम फिर भी न गया। वह देश की स्वाधीनता के लिये कुछ न कुछ करते ही रहे।

राणा लक्ष्मणसिंह (३)

१३वीं सदी में देहली के तख्त पर बैठता था—अलाऊद्दीन खिलजी। उसके हरम में एक से एक सुन्दर, कई बेगमें थीं, तो भी वह चित्तौड़ के राणा लक्ष्मणसिंह के चचा भीमसिंह की पत्नि पद्मिणी के रूप-लावण्य की प्रशंसा सुन-सुन कर उसे पाने के लिये अधीर हो उठा। उसने बेहिसाब सेना मेवाड़ की सीमा पर ला जमा की और एक दूत द्वारा कहला भेजा कि अगर पद्मिनी मिल जाय तो मैं लौट जाऊं। राजपूत भला कब इसे स्वीकार कर सकते थे ? उन्होंने उत्तर दिया—'तुम्हारी इस पापवृत्ति का फल युद्ध-भूमि में दिया जायगा। अलाऊद्दीन ने बदला लेने का हुकम दिया। भीमसिंह ने चित्तौड़ का सिंह-द्वार बंद कर लिया। कई महीने तक चित्तौड़ को घेरे रहने पर भी जब राजपूत जरा न झुके तो तंग आकर अलाऊद्दीन ने कहला भेजा कि अगर पद्मिनी का एक बार दर्शन ही पा जाऊँ तो लौट जाऊँ। राजपूतों ने शीशे में पद्मिनी का रूप दिखाना स्थिर किया और अलाऊद्दीन को बुला भेजा। भीमसिंह खुद चित्तौड़ के सिंह-द्वार पर पहुंचा और अलाऊद्दीन को ले आया। पद्मिनी का प्रतिबिम्ब देख कर अलाऊद्दीन हैरान रह गया। मन की बात मन में रख कर कहने लगा 'भीमसिंह ! अब मेरी तुम से कोई शत्रुता नहीं रही। तुम मेरे दोस्त हो गए। सरल-हृदय भीमसिंह खुश होगया और उसे पहुंचाने के लिये उसके डेरे तक साथ गया। वहां अलाऊद्दीन के इशारे से भीमसिंह को कैद कर लिया गया।

पद्मिनी की सलाह से राणा लक्ष्मणसिंह ने एक चाल चली।

भीम की मुक्ति के बदले पद्मिनी का डोला देना स्वीकार किया। डोला गया। सात सौ डोला और गया, पद्मिनी की सखियों का प्रत्येक डोला छः छः आदमियों ने उठाया हुआ था। पद्मिनी का १२ आदमियों ने। पद्मिनी ने भीम के अन्तिम दर्शन की मांग की। आध घंटे का समय मिला। कितनी देर हो गई मुलाकात खतम न हुई। इस बीच में दो सौ डोला वापिस चला गया। हार कर देखा, न पद्मिनी न भीमसिंह। डोले में सखियों के बदले शस्त्रधारी राजपूत। क्रोध का ठिकाना न रहा। तलवारें निकल आईं। युद्ध हुआ। दो सौ डोले का पीछा किया। गया। भीम और पद्मिनी उन्हींमें चले गए थे। वहां भी युद्ध हुआ। उस युद्ध में गोरा और बादल खूब लड़े और काम आए। इतने में चितौड़ से और भी सेना आगई। उसने अलाऊद्दीन की फौज को मार भगाया। अलाऊद्दीन अपनासा मुंह लेकर दिल्ली लौट गया पर फिर बड़ी भारी सेना लेकर चढ़ आया। भयंकर युद्ध हुआ। राणा लक्ष्मणसिंह के १२ पुत्र थे। एक-एक कर ११ उसने समराग्नि में जला दिये। १२वां वंश-लोप हो जाने के ख्याल से सुरक्षित स्थान पर भेज दिया। उसकी जगह आप वीरगति को पा गया। हजारों राजपूत मारे गये। विजय की कोई आशा न देख १२ हजार स्त्रियों सहित पद्मिनी ने आग की शरण ली। जब अलाऊद्दीन विजय-दुन्दभी बजाता हुआ भीतर आया तो पद्मिनी के बदले पद्मिनी की राख मिली। निराशा के समुद्र में डूब गया। मालदेव नामक एक देशद्रोही राजपूत को प्रतिनिधि रख कर अलाऊद्दीन दिल्ली लौट गया।

राणा सांगा (४)

उदयसिंह ने अपने पिता राणा कुम्भा को मारकर चित्तौड़ की गद्दी हासिल की, पर शीघ्र ही वह गद्दी से उतारा गया और उसकी जगह कुम्भा का भाई रायमल गद्दी पर बैठाया गया। रायमल की ग्यारह रानियों ने चौदह पुत्र और दो कन्याएँ पैदा कीं। पहिला संग्रामसिंह, दूसरा पृथ्वीराज और तीसरा जयमल। सूरजमल नामक एक व्यक्ति ने इन तीनों को ऐसा पाठ पढ़ाया कि तीनों ही पिता की गद्दी के लिये लालायित होने लगे। आखिर एक दिन तीनों भाई एक धर्मोपदेशिका चारणी के पास यह पूछने गए कि हम में से कौन जन पिता की गद्दी हासिल करेगा। चारणी ने संग्रामसिंह का नाम लिया। इस पर पृथ्वीराज जल भुन गया और संग्रामसिंह को खत्म कर देने की कोशिश करने लगा। खत्म तो वह न कर सका, पर संग्रामसिंह को काना और जख्मी उसने जरूर कर दिया। संग्रामसिंह भाग कर अज्ञात-वास करने लगा। उसने एक गड़रिये की नौकरी करली। फिर कुछ समय बाद उसने एक घोड़ा और कुछ हथियार मोल लिये और अजमेर की ओर चला। रास्ते में परमार सरदार कर्मचन्द से भेंट होगई। कर्मचन्द ने उसे अपने पास रख लिया और समय पाकर अपनी पुत्री भी उसे विवाह दी। जब रायमल को पृथ्वीराज की करतूतों का पता लगा तो उसने पृथ्वीराज को घर से निकाल दिया। जयमल को एक सरदार ने मार डाला। पृथ्वीराज भी कई वीरोचित कार्य करके मर गया। अब रायमल को पता लगा कि साँगा कर्मचन्द के यहां है। उसने उसे बुलाकर गद्दी पर

बैठाया और आप अगला रास्ता लिया । साँगा की अवस्था इस समय केवल २० वर्ष की थी । मेवाड़-भूमि इस समय देहली मालवा और गुजरात, इन तीन मुसलमान रियास्तों से घिरी हुई और सताई जाती थी । सांगा ने सब से पहिले राजस्थान के राजाओं को एक सूत्र में बाँधा । इससे मुसलमान घबड़ाए । उन्होंने तत्कालीन देहली-सम्राट इब्राहीम लोदी की शरण ली । लोदी ने मेवाड़ पर हमला किया, पर हार गया । राणा विजयी तो हुआ पर उसका एक हाथ जाता रहा । एक बार फिर लोदी को हराया और फिर रणथम्भोर का किला जीत लिया । मालवा के शासक महमूद खिलजी का भी मान मर्दन किया । एक हिन्दू रियास्त ईडर की गद्दी के झगड़े में पड़ कर गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर खां का भी अहंकार तोड़ा । इस सिलसिले में राणा के एक सरदार कान्हसिंह ने एक बड़े साहस का काम किया । दिल्लीपति की हार से खिन्न होकर पंजाब के शासक दौलतखां लोदी ने इब्राहीम के विरुद्ध काबुल से बाबर को बुला भेजा । बाबर पहिले ही भारत पर आंख लगाए बैठा था । १२ अप्रैल १५२६ को पानीपत के मैदान में बाबर और इब्राहीम की सेना में भारी-युद्ध हुआ । इब्राहीम हार गया । बाबर ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया । अब उसने सांगा को हराने की फिक्र की । इधर साँगा ने उसे निकाल बाहर करने की सोची । कई अफगान सरदारों ने भी साँगा का साथ दिया । १६ मार्च १५२७ को सीकरी के पास बाबर और सांगा की सेनाओं में घमासान-युद्ध शुरू हुआ । सांगा की सेना में ८० हजार घुड़ सवार और बहुत से पदाति थे । पहिले तो बाबर घबड़ाया पर आखिर जी पक्का करके लड़ा । सांगा कभी न हारता पर उसका हिन्दु-कुल-कलंक

सलहदी २५ हजार सेना लेकर बाबर के साथ जा मिला। राणा लड़ते-लड़ते बहुत जख्मी हो गया। उसके सरदारों ने उसे युद्ध भूमि से निकाल लिया। बाबर सफल मनोरथ हो गया। स्वास्थ्य होने पर सांगा ने एक बार फिर सफलता-देवी के दर्शन करने चाहे, पर कर न सका। दो वर्ष बाद मर गया।

महाराणा प्रताप (५)

अकबर की गहरी धार्मिक और राजनीतिक चाल में आकर, या जानबूझ कर अपने ऐशोआराम को सुरक्षित रखने और उसे बढ़ाने के लालच में आकर, खुशामद के तौर पर अनेक छत्र-धारी क्षत्रियों ने अपनी कन्याएं अकबर को ब्याह दीं पर मेवाड़ के सिसोदिया क्षत्रियों ने नहीं। अकबर इस बात को लापरवाही में नहीं फेंक सकता था।

मेवाड़ का राणा उदयसिंह सुयोग्य नहीं था। का-पुरुष था। अकबर ने मेवाड़ पर हमला किया और मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ ले गया। उदयसिंहने दूसरी राजधानी बनाली, उदयपुर। उदयसिंह के बाद, जब प्रताप पिता की गद्दी पर बैठा तो चित्तौड़ को फिर से पाने की सोचने लगा। वह समझता था कि यह सिर धड़ की बाजी है। सब से पहिले उसने अपने तमाम पहाड़ी किलों को मुरम्मत कराया। राजधानी को उदयपुर से हटाकर

कमलमीर में लेगया। फिर प्रजा को आज्ञा दी कि समतल भूमि को छोड़ कर सब दुर्गम जंगलों और पहाड़ों में चले जायें। लोग चले गए। अब स्वाल आया धन का। उन दिनों मुगलों के साथ योरोपियनों का व्यापार मेवाड़ के रास्ता से होता था। प्रताप के सरदार ने उसी पर वक्र-दृष्टि की। आने-जाने वाले माल-असबाब को लूटना शुरू किया।

सब से पहले जिस क्षत्रिय-राजा ने अपनी कन्या अकबर को दी थी, वह था अकबर का राजा भगवानदास। उसका पोता मान-सिंह, अकबर का सेनापति था। शोलापुर-विजय करके मानसिंह मेवाड़ आया। प्रताप ने अपने पुत्र अमरसिंह द्वारा उस का स्वागत तो खूब किया, पर साथ बैठ कर खाना न खाया। मान-सिंह उससे चिढ़ गया और एक भारी सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ आया। हल्दी-घाटी के मैदान में बड़ा भारी युद्ध हुआ। राजपूतों की कमान खुद प्रताप करता था। वह योद्धा ढूंढता था मानसिंह को, पर वह न मिला। बे-हिसाब मुसलमान मारे गए। हजारों राजपूत भी काम आये। प्रताप खुद भी मरते-मरते बचा। उसे बचाया एक राजपूत सरदार ने। बड़ी चालाकी से अपने प्राण देकर।

वर्षा आजाने के कारण युद्ध रुक गया। उसके बाद फिर शुरू हुआ। भाग्य ने इस बार भी साथ न दिया। प्रताप कमल-मीर के किले में चला गया। एक देशद्रोही राजपूत ने मुगलों को बतला दिया। मुगल सेना वहाँ पहुंच गई। युद्ध होने लगा। प्रताप चौंद दुर्ग में चला गया। मुगल सेना वहां भी जा पहुंची। प्रताप ने वहाँ भी आत्म-समर्पण न किया, खूब लड़ा। मुगलों ने सारे मेवाड़ को चारो ओर से घेर लिया। प्रताप का तमाम धन

जन, इस समय खत्म हो चुका था। कोई चारा न देख, वह बाल बच्चों को लेकर आरावली-पहाड़ के अनेक स्थानों में घूमने लगा। यहाँ उस के सहायक थे, कुछ एक विश्वास-पात्र राजपूत-सरदार और भील। कहते हैं, एकबार घबड़ा कर उसने अकबर से सुलह कर लेना चाहा, पर अब यह बात गलत साबित होगई है। प्रताप चाहता था, कहीं से धन मिल जाय और एक बार फिर खुल कर युद्ध करूं। दैवयोग से उसे मिल गया। दिया उसके नगर-सेठ भामाशाह ने। प्रताप ने उसी से फिर सेना संग्रह की और युद्ध जारी किया। एक चित्तौड़ नहीं, बाकी सब छिने हुए स्थान प्राप्त कर लिये। ३२ किलों पर कब्जा जमाया। अकबर-राज्य के मालपुर नाम के व्यापारी-नगर को भी लूटा। आखिर वृद्ध हो जाने से चुप कर के बैठ गया, पर दिल उसका फिर भी करता था कि मातृभूमि को आजाद कराऊँ। वह अपना कार्य-भार अपने सरदारों के कन्धों पर छोड़, कर आप १५६७ में स्वर्ग सिधार गया।

एक कवि के शब्दों में प्रताप के निम्न लिखित शब्द ध्यान योग्य हैं:—

जिन कुल की मरजाद लोभ-बस दूर बहाई।
जीवन-भय जिन छोड़ दई, आपनी बड़ाई॥
जिन जग-सुख-हित करी, जाति की जगत-हंसाई।
लखि जिन को सुख, वीर सबै सिर रहे निवाई॥
तिन के संग खानो कहा, मुख देखतहू पाप है।
जाइ सीस बरु धर्म-हित, यह सिसोदिया थाप है॥

राणा राजसिंह (६)

शाहजहां के चारों पुत्र—दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद—पिता के जीते जी ही गद्दीके लिये लड़ने लगे। चारोंने राजसिंहसे सहायता माँगी। राजसिंहने दाराकी सहायता की, पर दुर्भाग्य से दारा हार गया। औरंगजेब पिता को कैद करके गद्दी पर बैठ गया। राजसिंह के लिये उसके मन में बैर-भाव घर कर गया।

मुगल-साम्राज्य में एक छोटी सी रियासत थी—रूपनगर। राजा का नाम था, विक्रम सोलाङ्की। राजा की एक कन्या थी, प्रभावती। वह बड़ी सुन्दरी थी। उसे पाने के लिये औरंगजेब ने दो हजार सेना के साथ एक प्रस्ताव रूपनगर भेजा। विक्रम सोलांकी नहीं चाहता था अपनी कन्या उसे देना। कन्या भी नहीं चाहती थी मुगलों के घर जाना। पिता को चिन्तित देख कर कन्या ने रक्षा के लिये राजसिंह को एक पत्र लिखा। राजसिंह थोड़ी सी सेना लेकर रूपनगर आया और उस ने मुगल-सेना को मार भगाया। विक्रम सोलाँकी ने प्रभावती राजसिंह को सौंप दी। औरंगजेब यह सब कथा सुन कर मन ही मन बड़ा जला, पर इस जलन को उसने प्रकट न होने दिया।

मारवाड़ का राजा यशवन्तसिंह औरंगजेब का वेतन भोगी सेनापति था। औरंगजेब ने उसे विद्रोह शान्त करने लिये काबुल भेजा। काबुल जाकर उसने विद्रोह शान्त कर दिया। इसके पुरस्कार-स्वरूप औरंगजेब ने उसे धोखे से मरवा डाला। अब वह उसके छोटे से पुत्र अजीतसिंह को कैद करके उसका राज्य

भी हड़प लेने की सोचने लगा। यह देख कर यशवन्तसिंह की रानी ने रक्षा के लिये राजसिंह से प्रार्थना की। राजसिंह ने अजीतसिंह को मेवाड़ बुला भेजा। अजितसिंह अपने कुछ विश्वासी सर्दारों के साथ मेवाड़ को चल दिया। उधर औरंगजेब को भी इसका पता लग गया। उसने पांच हजार सेना, अजित का मार्ग रोकने के लिये भेजी। उसने अरावली-पहाड़ के नजदीक अजितसिंह को जा रोका, पर अजितसिंह फिर भी निकल गया। मेवाड़ जा पहुंचा। राजसिंह ने उसके रहने आदि की सुन्दर व्यवस्था कर दी।

औरंगजेब ने हिन्दुओं पर 'जजिया' लगा दिया। हिन्दु इस से हा-हा कार कर उठे। यह देख कर राजसिंह ने बड़ी मीठी भाषा में औरंगजेब को एक पत्र लिखा कि जजिया हिन्दुओं पर से हटा दे। औरंगजेब यह सोच कर कि यह मेरे हर काम में दखल देता है, बड़ा नाराज हुआ। उसने राजसिंह को सजा देने के लिये बड़ी भारी सेना तैयार की। काबुल से राजकुमार आजम को, बंगाल से अकबर को और महाराष्ट्र से मुअज्जिम को भी सहायतार्थ बुला लिया। भारी दल-बल के साथ मेवाड़ पर चढ़ आया। यह देख कर राजसिंह ने मेवाड़ को जनशून्य कर दिया। तमाम लोगों को जंगलों में भेज दिया और अपनी सेना को भी तीन भागों में बाँट कर पहाड़ों में छिपा दिया। एक भाग की कमान अपने हाथ में ली, एककी अजितसिंहके और एक की भीमसिंह के दी। मुगलों ने आकर देखा, मेवाड़ खाली है। वह बिना रक्त पात के कई स्थानों पर काबज होगये। शाहजादा अकबर ने ५० हजार सेना के साथ उदयपुर पर हमला कर दिया। इसी समय ससैन्य अजितसिंह उस पर टट पड़ा। अकबरने अजितसिंह

के आगे आत्म-समर्पण कर दिया और उस से मिल भी गया। जब औरंगजेब ने यह सुना तो बड़ा घबड़ाया। इस बीच में उस ने मारवाड़ को भी मजा चखाने की व्यर्थ चेष्टा की। राजसिंह की सहायता होने से वह मारवाड़ का भी कुछ न बिगाड़ सका। अब उसने अकबर और राजपूतों में फूट डालने के लिये एक पत्र लिखा। उससे राजपूत बहक गये और उन्होंने अकबर पर सन्देह करना शुरू कर दिया। अकबर शम्भाजी के पास चला गया। वहां से फारस चला गया। अजित के युद्धों से तंग आकर औरंगजेब ने राजसिंह से सुलह कर लेनी चाही, पर इस बीच में राजसिंह मर गया।

वीर-बैरागी माधोदास (७)

पहिला नाम लक्ष्मण देव था। तब गृहस्थी थे। लक्ष्मणदेव का जन्म, सन् १६७० में जम्मू और काश्मीर स्टेट की एक छोटी सी रियासत पुञ्छ के राजौरी नामक ग्राम में हुआ था। पिता का नाम रामदेव था। शिकार खेलने का बड़ा शौक था। उसी से बैराग्य हुआ। घर-बाहर छोड़ कर बैरागी-साधु हो गया। नाम पड़ा माधोदास। माधोदास घूमता-फिरता दक्षिणीय प्रान्त के नादेड़ नामक स्थान में आश्रम बना कर रहने लग गया। वहीं १७०८ में गुरु गोबिन्दसिंहसे पहली मुलाकात हुई। माधोदासकी योग्यता गुरु साहबने जल्दी ही भाँप ली और उसे पंजाब की दुरावस्था का और

अपने किये कार्य्योंका सब हाल सुनाकर उसे अपनी ओर से पंजाब भेजने की इच्छा प्रकट की। गुरु साहबकी आज्ञा शिरोधार्य कर, माधोदास पंजाब जाने के लिए तैयार होगया। गुरु साहबने अपनी कृपाण, तरकस से पांच बाण और पंजाब के सिक्खों के नाम एक पत्र देकर उसे विदा किया। माधोदास पंजाब आया। उसने अपने को गुरु का बन्दा (गुलाम) प्रकट किया। झुण्डों के झुण्ड सिक्खों के उसके झण्डे-तले जमा हो गए। युद्ध के लिये कूच होगया। ३० मई १७१० को बन्दा ने सरहिन्द पर आक्रमण किया और उसके २८ परगनों सहित उसे ले लिया। इस प्रकार, यमुना और सतलुज के बीच का बहुतसा भाग सिक्खों के अधिकार में आगया। जलालाबाद का हाकिम भी बड़ा आततायी और अन्यायी था। बन्दा ने उस पर भी हमला करके उसे हरा दिया। और भी कई स्थानों से मुसलमानों की हकूमत हटाकर हिन्दुओं की हकूमत कायम की। फिर करनाल और पानीपत की बारी आई। उन पर भी हाथ साफ किया। अब देहली कोई दूर न थी। बादशाह बहादुरशाह, दक्षिण गया हुआ था। बन्दा की कामयाबियों के समाचार सुन कर वह फौरन वापिस आया। १० नवम्बर १७१० को थानेश्वर और तरवाड़ी के बीच की शाही सड़क पर, शाही सेना ने बन्दा का मुकाबिला किया। कभी बन्दा हार जाय, कभी शाही-सेना। बहुत यत्न करने पर भी, बहादुर शाह उसे काबू न कर सका। उसके बाद, जब फर्रुखसियर का जमाना आया तो भाग्य ने सिखों का साथ छोड़ दिया। १७१२-१३ में हजारों सिख पकड़े गये और मारे गए। १४ में बड़ा भारी अकाल पड़ा। उस में भी हिन्दुओं का बड़ा नुकसान हुआ। बन्दा फिर भी मैदान में आ ही गया। बटाला और कलानौर के बीच बड़ा युद्ध

हुआ। दो वर्ष बाद फिर वहीं बन्दा ने बिगुल बजाया। लाहौर के समीप फिर मुसलमानों को पछाड़ा। आखिर गुरदासपुर के किले में बन्दा बुरी तरह घिर गया। जब ऊँठ और गधे खा-खा कर भी खत्म कर दिये तो लाचार बन्दा को बादशाही सेना के आगे झुक जाना पड़ा। झुक जाने का एक कारण यह भी था कि हकूमत के एजंटों के बहकावे में आकर गुरु गोविन्दसिंह की धर्मपत्नी ने बन्दा की सेना में फूट डाल कर, उसकी ताकत बहुत कमजोर कर रक्खी थी और बाहर भी दलबन्दी कर रक्खी थी। बादशाही सेना ने बन्दा के बहुत से बहादुरों को कत्ल कर दिया। जो बचे उन की गिनती ७४० थी। बन्दे सहित उन्हें पकड़ कर देहली लेजाया गया। रास्ते में बहुत बुरा सलूक किया। देहली में भी बन्दा की खूब बेइज्जती की गई। प्रति दिन उस के १०० साथी मारे जाते, आखिर बन्दा की बारी आई। सब से पहिले उसके बच्चे को, उसके साम्हने जिबह किया गया। फिर गरम-गरम चिमटों से उसका शरीर नोचा गया। वह बेहोश हो गया। अधिकारियों ने उसे मरा जानकर यमुना में फेंकवा दिया। बन्दा जीता था। वह डूबता तैरता जा रहा था। एक मुसलमान फकीर ने बाहर निकाला, और भला चंगा किया। बन्दा वहाँ से पंजाब में आया। उसने चाहा कि एक बार फिर सिर उठाऊं, पर परिस्थितियों ने उसे इजाजत न दी। वह अपने गांव में आ गया। वहाँ उसने एक और विवाह कर लिया। उस से एक पुत्र पैदा हुआ। आखिर १७४१ में वीर बैरागी माधोदास इस कृतघ्न संसार को छोड़ गया।

महाराजा रणजीतसिंह (८)

सन् १४७० के लग भग काल्ह नाम का एक जिमीदार लाहौर के नजदीक, भट्टियां नाम के एक गांव में रहता था। इतिहास विदित, यही महाराजा रणजीतसिंह का पूर्व-पुरुष है। इसी के वंश में २ नवम्बर १७८० को गुजरांवाला में सरदार महाँसिंह के घर, महाराजा रणजीतसिंह का जन्म हुआ। उस समय महाराजा के पूर्वज, एक साधारण स्थिति से निकल कर, बहुत उन्नतावस्था को पहुंचे हुए थे। महाराजा के पिता ने अभी दो ही साल हुए थे कि रसूल-नगर के हाकिम, पीर मुहम्मद खां को हराया था। उस के कारण उसकी धाक पहिले से भी ज्यादा, सारे पंजाब में जम गई थी।

सन १७८५ में महाराजा रणजीतसिंह की सगाई हो गई और उस के कुछ ही समय बाद—बहुत छोटी अवस्था में—विवाह भी हो गया। १२ वर्ष की अवस्था में ही पिता जी स्वर्ग सिधार गए। राज्य का भारी बोझ, छोटे से कन्धों पर आ पड़ा। उस समय पंजाब का बहुतसा भाग सिक्खों की १२ मिसलों के अधिकार में था। महाराजा रणजीतसिंह 'सुखचकरिया' मिसल के थे। यह भी १२ मिसलों में से एक था।

लाहौर उस समय, भंगी-मिसल के तीन सरदारों ने कब्जे में किया हुआ था। १७९५-९७ में अहमदशाह दुर्रानी के पोते, शाह जमान दुर्रानी ने पंजाब पर हमले शुरू किये और एक दिन वह लाहौर में भी प्रविष्ट हो गया, पर जल्दी ही वहां से

लौट भी गया। सिक्खों ने उसका पीछा किया। वह तो निकल गया, पर उसका लूटा हुआ सारा सामान, सिक्खों के कब्जे में आगया। शाह जमान १२ हजार फौज के साथ, अपने प्रतिनिधि शाह नबीखाँ को छोड़ गया था। अपने कुछ एक साथियों के साथ, महाराजा रणजीतसिंह ने उसका मुकाबिला किया और उसे मार डाला। यह १७६८ की बात है। १७६६ में महाराजा रणजीतसिंह ने लाहौर ले लिया। १८०० में जम्मू पर चढ़ाई की। जम्मूके राजाने अधीनता स्वीकार करली। जम्मू जाते-आते रास्ते में जो-जो महत्व पूर्ण स्थान पड़े, उन पर भी महाराजा ने कब्जा कर लिया। इसी समय अंग्रेजों ने महाराजा से मित्रता का गठ बन्धन किया। सन् १८०१ में बैशाखी वाले दिन लाहौर के किले में महाराजा रणजीतसिंह ने महाराजा का पद ग्रहण किया। इस दिन बड़ी धूम-धाम हुई। राज्यको सुदृढ़ और सुव्यवस्थित बनाने के लिये अनेक प्रबन्ध हुए। "नानकशाही" सिक्के का चलन भी इसी दिन से जारी हुआ। लाहौर के इर्द गिर्द प्राचीर बनाने के लिये एक लाख रुपया भी इसी दिन मंजूर हुआ। इसके बाद, करीब एक साल लगाकर महाराजा ने विरोधियों और षड्यन्त्र कारियों का दमन करके, पंजाब के भिन्न-भिन्न इलाकों में सुख और शाँति स्थापित की। १८०२ में महाराजा के घर युवराज खड्ग सिंह का जन्म हुआ। इसी वर्ष महाराजा ने अमृतसर को भी सिख-राज्य में मिला लिया। फिर और कई इलाकों को सिख राज्य में मिलाने के बाद १८०४ में अमृतसर में एक भारी दरबार किया। १८०५ में इन्दौर के राजा जसवन्तराव होलकर ने अंग्रेजों के विरुद्ध महाराजा से सहयोग की कामना की। महाराजा ने लड़ाई में योग देना पसन्द न कर, उसकी और अंग्रेजों की सुलह करा दी। १८०६ में महाराजा का और अंग्रेजों का

पहला अहदनामा हुआ। इससे पहले और इसके बाद, अनेक देश-देशान्तरों पर महाराजा ने विजय पाई। मुल्तान, काश्मीर और पेशावर तक को अपने आधीन किया। अंग्रेजों से गाढ़ी मित्रता थी। फलतः दोनों ने मिलकर, अफगानिस्तान पर हमला कर दिया और २५ अप्रैल १८३६ को कन्धार पर विजय पाकर शाह शुजाको तख़्त पर बैठाया। इस चढ़ाई में बीमार होने कारण महाराजा खुद नहीं गये थे। बीमारी बढ़ रही थी। आखिर २८ जून १८३६ को वह जबरदस्ती महाराजा को साथ ले गई। हतभाग्य पंजाब बिलखता हो रह गया। महाराजा के साथ दासियों सहित चार रानियों ने भी सहमरण किया। महाराजा साहब अपने पीछे युवराज सहित, अच्छा परिवार और महान् यश छोड़ गए। लेकिन शोक कि षड्यन्त्र कारियों की चालों और उत्तराधिकारियों की अयोग्यता के कारण, जल्दी ही राज्य नष्ट हो गया। केवल १० वर्ष में ही अपनी स्वाधीनता गंवा कर दूसरों के अधिकार में चल गया। इन १० वर्षों में भी कोई शांति और सुव्यवस्था न रही। बड़े जोरों से तलवार चलती रही। तलवार भी अपने ही सगे सम्बन्धियों और भाइयोंके गले पर। उसे देखते हुए तो यही कहना पड़ता है कि जो हुआ, अच्छा ही हुआ।

रमणीरत्न-माला

रमणीरत्न-माला के
४ लेख

रानी दुर्गावती (१)

मध्य-भारत में जब्बलपुर के पास एक कस्बा है—गढ़मंडल। किसी समय वह बहुत उन्नतावस्था में था। यह बात अकबर के समय की है। उस समय उसका राजा था, दलपति शाह। दलपति मर गया। पीछे रह गई उसकी विधवा-रानी दुर्गावती और अल्पवयस्क पुत्र, वीर नारायण। राजकाज दुर्गावती चलाने लगी। वह भी युद्ध-विद्या विशारद और राज-काज चलाने में पटु थी। १५ वर्ष तक वह बड़ी योग्यता से राज्य सम्भाले रही। इसी बीच में कई बार उस पर हमले हुए, पर वह जरा नहीं घबड़ाई। सदा वैरियों से लड़ती और उन्हें पराजय देती रही। कड़ा मानिकपुर का सूबेदार, आसफखाँ बड़ा दुष्ट था। उसने भी रानी से कई बार हार खाई थी, इस लिये वह रानी पर ज्यादा चिढ़ा हुआ था। एक बार किसी ने रानी दुर्गावती पर चढ़ाई करने के लिये अकबर को उकसाया। उसने आसफखां की अधीनता में ही बहुत सी सेना रानी दुर्गावती पर चढ़ा भेजी। यह बात सन् १५६४ की है। रानी ने देखा, सत्तर हजार सेना, दुश्मन की है।

अपने पास कुछ हज़ार ही हैं, तो भी वह १५०० हाथी और ८००० पदाति लेकर चण्डीकी तरह मैदान में निकल आई। पहिले दिन ही शत्रु के ६००० आदमी खेत रहे। यह देखकर आसफखाँ का हौंसला टूट गया। रात हुई। दोनों ओर से युद्ध बन्द होगया। राजपूत विजय की खुशी में मस्त होकर सो गये। आसफखाँ को नींद कहां! उसने आधी-रात के समय सो रही राजपूत सेना पर हमला कर दिया। अचानक हमले से राजपूत सेना घबड़ा उठी, यह देख कर रानी के १९ वर्षीय वीर नारायण को बड़ा गुस्सा आया। उसने सेना को ढाडस देते हुए, फिर से तैयार कर लिया। राजपूत दिल-खोल कर लड़ने लगे। मुसलमान अब फिर सिर पर पांव धर कर उड़ने लगे।

आसफखाँ ललकार उठा और उसने भाग रहे मुसलमानों को ईमान का वास्ता डाल कर, एकत्र करके, एक ही बार वीर नारायण पर हमला कर दिया। बड़ी बहादुरी से लड़ता हुआ वीर नारायण मूर्छित हो कर धरती पर गिर पड़ा। रानी दुर्गावती भी मैदान में थी। पुत्र की यह दशा देख कर वह जरा भी नहीं घबड़ाई। उसने फौरन पुत्र को चौरागढ़ के किले में भेज दिया और आप पूर्ववत लड़ती रही। मुसलमान थे ज्यादा, और राजपूत थे थोड़े, इस लिये आखिर राजपूतों के पाँव उखड़ने लगे। यह देख कर रानी अपनी सेना को किले की ओर ले गई और गढ़ मंडला से बारह मील इधर एक तंग घाटी में शत्रुदल की प्रतीक्षा करने लगी। इतने में अचानक शत्रुदल का एक तीर आकर रानी की आंख में लगा। आंख निकल गई। रानी के अंग-रक्षकों ने कहा-'रानी किले में चली जाय' पर वह न गई। वहीं डटी रही। इतने में मुगल-सेना सिर पर आ गई। लगा भयंकर युद्ध होने।

रानी का सारा शरीर छलनी-छलनी हो गया था। अब रानी में खड़े रहने की हिम्मत न थी। इधर राजपूत सेना भी पराजय का मुंह देख रही थी। रानी ने यह सोच कर, कटार से अपना अन्त कर लिया कि कहीं मैं बन्दी न बनाली जाऊँ। रानी का पुत्र वीर नारायण उससे पहिले, दो महीने लड़ कर वीरगति को पा चुका था। रानी और राजकुमार के न रहने से भी राजपूत लड़े पर, विजय आसफखां की ही मिली। राजपूत हार गए। गढ़ मंडला जाता रहा। आसफखां की सारी मनोकामना न पूरी हुई। वह रानी पर भी कुदृष्टि रखता था। उसे न पा सका। आधा खुशी और आधा मायूस किले में घुसा।

झांसी की रानी लक्ष्मी बाई (२)

मयका नाम मनुबाई था। पिता का नाम मोरोपन्त तांबे और माता का नाम भागीरथी बाई था। मनुबाई का जन्म, १८ नवम्बर १८३५ को काशी में हुआ था। बड़ी सुन्दर और प्रतिभा सम्पन्न लड़की थी। पिता, पहले चिमणा जी पेशवा के यहां काशी में आश्रित था। चिमणा जी के देहान्त के बाद, बाजीराव पेशवा के यहाँ चला गया। बाजीराव, कानपुर के पास बिठूर में रहता था। वहां रहते हुए जल्दी ही मनु की माता का देहान्त हो गया। अब बिचारा पिता ही उसका लालन-पालन करने लगा। बाजीराव का

ध्यान लड़की की ओर गया। वह अब उस पर विशेष कृपा करने लगा। बाजीराव के सन्तान कोई न थी। ४ जून १८२७ को उसने एक पुत्र गोद लिया।। वही आगे चल कर नाना साहब के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाजीराव ने नानासाहब के साथ साथ मनुबाई के लिए भी यथोचित शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करदी। जल्दी ही मनुबाई ने सारी युद्ध-विद्या सीख ली। अब उसके विवाह का फिकर होने लगा। झांसी के बाबा गंगाधर राव की पत्नि का देहान्त हो गया। बाजीराव ने उसी के साथ मनुबाई का विवाह कर दिया। अब नाम लक्ष्मी बाई हो गया। बाबा गंगाधर राव का महल जग-मगा उठा। दिन बड़े सुख से कटने लगे। १८५१ में लक्ष्मी बाई ने एक पुत्र-रत्न पैदा किया, पर दुर्भाग्य से वह तीन ही मास का होकर मर गया। शोक का पहाड़ टूट पड़ा। गंगाधर राव उस शोक को सहन न कर सके। २१ नवम्बर १८५३ को इस संसार से कूच कर गये। कूच करने से पहले आनन्द राव नाम के एक बालक को गोद ले गए। यद्यपि वह गोद ले गए थे, ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के जिम्मेवार अधिकारियों के सामने, तोभी कम्पनी ने स्वीकार न किया और ७ मार्च १८५४ को झाँसी का राज्य कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया। झांसी की रानी की पेंशन मुकर्रर करदी गई। लार्ड डलहौजी की लेप्स पालिसी ही ऐसी थी। उसके कारण देश में घोर अशान्ति उठ रही थी। १८५६ में डलहौजी इंग्लैण्ड चला गया। उस की जगह लार्ड केनिंग आया। उसके जमाने में फौजी सिपाहियों ने बगावत कर दी। नाना साहब, कुमर सेन और तांत्याटोपे आदि कितने ही बड़े-बड़े भारतियों ने उन का साथ दिया, पर हमारी चरित-नायिका का दिल न किया।

रानी का सारा शरीर छलनी-छलनी हो गया था। अब रानी में खड़े रहने की हिम्मत न थी। इधर राजपूत सेना भी पराजय का मुंह देख रही थी। रानी ने यह सोच कर, कटार से अपना अन्त कर लिया कि कहीं मैं बन्दी न बनाली जाऊँ। रानी का पुत्र वीर नारायण उससे पहिले, दो महीने लड़ कर वीरगति को पा चुका था। रानी और राजकुमार के न रहने से भी राजपूत लड़े पर, विजय आसफखां की ही मिली। राजपूत हार गए। गढ़ मंडला जाता रहा। आसफखां की सारी मनोकामना न पूरी हुई। वह रानी पर भी कुदृष्टि रखता था। उसे न पा सका। आधा खुशी और आधा मायूस किले में घुसा।

झांसी की रानी लक्ष्मी बाई (२)

मयका नाम मनुबाई था। पिता का नाम मोरोपन्त तांबे और माता का नाम भागीरथी बाई था। मनुबाई का जन्म, १८ नवम्बर १८३५ को काशी में हुआ था। बड़ी सुन्दर और प्रतिभा सम्पन्न लड़की थी। पिता, पहले चिमणा जी पेशवा के यहां काशी में आश्रित था। चिमणा जी के देहान्त के बाद, बाजीराव पेशवा के यहाँ चला गया। बाजीराव, कानपुर के पास बिठूर में रहता था। वहां रहते हुए जल्दी ही मनु की माता का देहान्त हो गया। अब बिचारा पिता ही उसका लालन-पालन करने लगा। बाजीराव का

ध्यान लड़की की ओर गया। वह अब उस पर विशेष कृपा करने लगा। बाजीराव के सन्तान कोई न थी। ४ जून १८२७ को उसने एक पुत्र गोद लिया।। वही आगे चल कर नाना साहब के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाजीराव ने नानासाहब के साथ साथ मनुबाई के लिए भी यथोचित शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करदी। जल्दी ही मनुबाई ने सारी युद्ध-विद्या सीख ली। अब उसके विवाह का फिकर होने लगा। झांसी के बाबा गंगाधर राव की पत्नि का देहान्त हो गया। बाजीराव ने उसी के साथ मनुबाई का विवाह कर दिया। अब नाम लक्ष्मी बाई हो गया। बाबा गंगाधर राव का महल जग-मगा उठा। दिन बड़े सुख से कटने लगे। १८५१ में लक्ष्मी बाई ने एक पुत्र-रत्न पैदा किया, पर दुर्भाग्य से वह तीन ही मास का होकर मर गया। शोक का पहाड़ टूट पड़ा। गंगाधर राव उस शोक को सहन न कर सके। २१ नवम्बर १८५३ को इस संसार से कूच कर गये। कूच करने से पहले आनन्द राव नाम के एक बालक को गोद ले गए। यद्यपि वह गोद ले गए थे, ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के जिम्मेवार अधिकारियों के सामने, तोभी कम्पनी ने स्वीकार न किया और ७ मार्च १८५४ को झाँसी का राज्य कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया। झांसी की रानी की पेंशन मुकर्रर करदी गई। लार्ड डलहौजी की लेप्स पालिसी ही ऐसी थी। उसके कारण देश में घोर अशान्ति उठ रही थी। १८५६ में डलहौजी इंग्लैण्ड चला गया। उस की जगह लार्ड केनिंग आया। उसके जमाने में फौजी सिपाहियों ने बगावत कर दी। नाना साहब, कुमर सेन और तांत्याटोपे आदि कितने ही बड़े-बड़े भारतियों ने उन का साथ दिया, पर हमारी चरित्र-नायिका का दिल न किया।

वह अंग्रेजों की भक्तिनी ही बनी रही। जब झाँसी में भी विद्रोह हुआ, तो उसने अंग्रेज स्त्री-बच्चों की रक्षा की और विद्रोह को दबा कर सागर के कमिश्नर की आज्ञा से झांसी का शासन अपने हाथ में ले लिया, पर अंग्रेजों को धोखा हो गया। उन्होंने जबर-दस्ती रानी से युद्ध छेड़ दिया। रानी बड़ी वीरता से लड़ी। सेनापति सर ह्यूरोज के पहिले तो पांव उखड़ गए पर आखिर उसने झांसी पर कब्जा कर लिया। रानी अपने बच्चे को पीठ पर बांध कर दो सहचरियों के साथ, तेग चमकाती हुई झांसी से निकल गई और कालपी में नाना साहब आदि के पास पहुंच गई। वहां उनसे मिल कर उसने खूब युद्ध किया। ग्वालियर के पास सर ह्यूरोज और ब्रिगेडियर स्मिथ से लड़ती हुई रानी बहुत जख्मी हो गई। प्राणान्त नजदीक जान कर रानी वहाँ से सुरक्षित स्थान को चली गई। सहेलियें भी साथ ही जंगल में। एक साधु की कुटिया के आगे घोड़े से उतर कर इह-लीला समाप्त कर गई। वीर-गति को पागई।

'जाओ रानी, याद रखेंगे, ये कृतज्ञ भारत वासी।
यह तेरा बलिदान जगावेगा, स्वतन्त्रता अविनाशी॥'

हाड़ी रानी (३)

रूप नगर की राजकुमारी प्रभावती की प्रार्थनानुसार उसकी रक्षा के लिये, मेवाड़ के राणा राजसिंह औरंगजेब के विरुद्ध सेना लेकर चले। साथ उनका प्रमुख सरदार चूड़ावत भी चला। चूड़ावत का विवाह हुए, अभी तीन दिन भी नहीं हुए थे। स्त्री का नाम था 'हाड़ी'। चूड़ावत उससे मिलने गया। नवविवाहिता स्त्री की चिन्ता से उस समय उसका चेहरा कुछ कुम्हलाया हुआ था। यह देख कर हाड़ी को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजपूत और यह हाल युद्ध के समय। उसने बड़े प्रेम से कहा-स्वामिन! मेरी कुछ चिन्ता न कीजिये। जाइये देश और जाति की रक्षा कीजिये। उस अबला का धर्म बचाइये। मैं हर तरह से प्रसन्न हूं। अपना कर्तव्य निभाना जानती हूं। चूड़ावत चल तो पड़े, पर उनका दिल अब भी अशान्त था। सीढ़ियों से उतरते हुए को एक बार फिर हाड़ी ने कहा-'निश्चिन्त जाइये। अपना कर्तव्य निभाइये। मैं अपना निभाऊँगी। राजपूत बाला हूं।' चूड़ावत का दिल फिर भी ठिकाने न हुआ। क्या होगा! मैं मर जाऊँगा तो क्या बनेगा, इसका?' उसे यकीन नहीं था कि मेरे बाद मेरी स्त्री जरूर सती हो जायगी। सीढ़ियें पार करते-करते उसने एक बार ऊपर की ओर देखा और आवाज दी-'देवी! अपना कर्तव्य मत भूल जाना।' अब वह चला तो गया, और उसने मारू-बाजा बजवा भी दिया, पर एक बार फिर उसे स्त्री का ध्यान आगया। अब उसने अपने नौकर के हाथ कहला भेजा कि धर्म क्या है, सदा स्मरण रखना। मैं अब पता नहीं लौट कर

आऊँ या न आऊँ। बड़ी प्रबल शक्ति से मुकाबिला है। हाड़ी ने सोचा, 'जब तक मैं जीती हूं, सरदार जी को मेरी चिन्ता बनी ही रहेगी और इस प्रकार वह दिल देकर न लड़ सकेंगे'। उसने नौकर से कहा—'सरदार साहिब को मेरा सिर देकर कहना कि मैंने तो अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है, अब तुम अपना कर्तव्य अच्छी तरह से निभाना। मैं समझती हूं कि मेरी चिन्ता आप के मार्ग में रुकावट है, इसी लिये अपना सिर भेज रही हूं।' हाड़ी ने अपना सिर अपने हाथ से उतार दिया। नौकर सिर और सन्देशा लेकर चूड़ावत के पास पहुंचा। चूड़ावत अपनी स्त्री का यह अपूर्व-त्याग देख कर गद्गद हो उठा। उसने रानी के सिर के बालों के दो भाग किये और उनसे उसका सिर अपने गले में लटका लिया। हाथ में भयंकर तलवार लेकर, रण में चण्डी की तरह नाचने लगा। उस में पहिले से सौ-गुणा जोश और बल आ गया। राजपूतों को सम्बोधन करते हुए उस ने कहा—'वीरो! देश और जाति की रक्षा के लिये मर मिटो।' राजपूत बड़ी वीरता से लड़े। मुट्ठी भर राजपूतों की सेना ने औरंगजेब की सेना को मार भगाया। रूपनगर को बचा लिया। राजकुमारी प्रभावती की रक्षा कर ली। यह देख कर प्रभावती का पिता बड़ा प्रसन्न हुआ। उस ने अपनी कन्या का हाथ राजसिंह को सौंप दिया। जब राजसिंह को हाड़ी की इस अद्भुत वीरता का पता लगा तो वह बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'हमारी इस विजय का असली कारण हाड़ी ही है। हाड़ी तू धन्य है।'

तीन बहादुर सिंहनियां (४)

(१) दीपकौर—औरंगजेब का जमाना था। हिन्दुओं का धन और धर्म लुट रहा था। दीपकौर ऐसे ही समय में हुई थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। उसका पति देश और धर्म की सेवा के लिये बहुधा बाहर ही रहता था, इस लिये वह बिचारी अकेली ही घर में दरवाजा बन्द करके ईश्वर-चिन्तन में लगी रहती थी। उसने सुना कि माझे के कुछ सिक्खों का एक जत्था गुरू गोविन्दसिंह जी के दर्शनार्थ जा रहा है, वह जत्थे के लिये कुछ अन्न-पानी लेकर गांव की सड़क पर आगई। अकेली ही थी, क्योंकि उसके गाँव में शायद और किसी सिक्ख का घर न था। इतने में दूर से धूल उड़ती नजर आई। उस ने जाना, गुरू के लाल आ गए। बड़ी प्रसन्न हुई पर असल में थी औरंगजेब की फौज, जो शान्ति और सुव्यवस्था के नाम पर शहरों और कस्बों में अत्याचार करती फिरती थी। फौज नजदीक आई, उसका सेनापति दीपकौर के रूप-यौवन को देख कर मोहित हो गया और उसे वश में लाने लगा। दीपकौर ने खूब फटकार बतलाई, पर वह धृष्टता करता ही गया। यह देखकर दीपकौरने बड़ी फुरती से कृपाण निकाल, उस पर ऐसा वार किया कि उसके प्राण पखेरू उड़ गए। यह देख कर मुगल-सेना उस पर टूट पड़ी। दीपकौर भला कब हटने वाली थी। उसने बड़ी वीरता से मुकाबिला किया, पर आखिर घायल हो कर गिर पड़ी। सेना चली गई। इतने में जत्था भी आ गया। वह उस शेरनी का शौर्य देख कर बड़ा ही प्रसन्न हुआ और उस मृतप्राय देवी को उठाकर

गुरू गोविन्दसिंह जी के पास लेगया। गुरू साहिब अपनी शिष्या की यह बहादुरी देख कर बहुत खुश हुए। उन्होंने उसकी सेवा शुश्रुषा का चंगा बन्दोबस्त कर दिया, जिससे वह दिनों में ही स्वस्थ हो गई और फिर अपने कार्य में लग गई।

(२) **माई भागो**—यह पहिले संसार को ब्रह्म-रूप जान कर अवधूत रहा करती थी। गुरू गोविन्दसिंह के उपदेश से यह कपड़े पहिन कर वीर-क्षत्राणी बन गई। सदा हाथ में भाला लिये फिरती थी। जब आनन्दपुर के किले में घिरे हुए गुरू गोविन्दसिंह को, उनके कुछ सिक्ख त्यागकर घरों को चले गये थे तो इसी माई भागो ने उन्हें फटकार कर फिर से उत्साहित कर दिया था। फलतः ४० सिख मुक्तसर (जिला फिरोजपुर) के पास शाही-सेना से लोहा लेकर वीर-गति को पा गए। जब गुरू साहिब ने खुद आकर यह देखा तो बड़े प्रसन्न हुए।

(४) **माई कपूर**—एक बार सिक्खों पर बड़ी सख्ती हो रही थी। हुक्म था कि जहां कोई सिक्ख मिले, उसे पकड़ लिया जाय और इस प्रकार जब ४० सिक्ख इकट्ठे हो जाएं तो उन्हें कत्ल कर दिया जाय। एक बार ३९ सिक्ख जमा हो गये, ४० पूरे करने के लिये वह एक १४ वर्षीय कपूर खत्री के लड़के को पकड़ लाए। उसकी सुन्दरता देख कर लाहौर का हाकिम उसे मुसलमान बनने के लिये डर और लालच देने लगा। माई कपूर उसी की मां थी। उसने कामना की कि मेरा लड़का शहीद हो जाय, पर मुसलमान न हो। फलतः ऐसा ही हुआ। लड़का शहीद हो गया।

गुरू-घर

गुरू-घर के
१२ लेख

श्री गुरू नानक देव (१)

जिस समय श्री गुरू नानकदेव पैदा हुए, पंजाब के हिन्दुओं की हालत बहुत खराब थी। सदियों से विदेशी आक्रमण कारियों का मुकाबिला करते-करते पंजाबी थक चुके थे। मुसलमानों के आगे झुक चुके थे। मुसलमान, हिन्दु-मन्दिरों और देवस्थानों को गिराकर, उनकी जगह मस्जिदें खड़ी कर रहे थे। हिन्दु-गौरव के तमाम चिन्ह मिटा रहे थे। हिन्दु खुद भी अपने अनेक कुसंस्कारों और अन्ध विश्वासों के कारण गिर रहे थे। जरा-जरा सी बातों पर लड़-झगड़ रहे थे। मामूली-मामूली सी भूलों पर, अपने भाइयों को घर से निकाल रहे थे। लाचार, सैंकड़ों और हजारों हिन्दु, हिन्दु-धर्म छोड़कर इस्लाम-मजहब कबूल कर रहे थे।

जिस क्षत्रिय-वंश में किसी समय राम पैदा हुए, उसीमें समय पाकर श्री गुरूनानक देव पैदा हुए, यह बात श्री गुरू गोविन्द सिंह जी ने अपने विचित्र-नाटक में भी बतलाई है। श्री गुरू नानकदेव जी का जन्म, संवत् १५२६ की कार्तिक-पूर्णिमा को राय भोए की तलवण्डी (वर्तमान ननकानासाहिब, जिला शेखूपुरा) में हुआ।

राय भोए पहले हिन्दु था। बाद में मुसलमान हो गया था। संवत् १४८६ में उसी ने तलवण्डी नामक गाँव बसाया था। गुरू नानक देव के पिता का नाम कालूमल और माता का तृप्ताँ था। गुरू साहब का बचपन से ही वैराग्य की ओर ध्यान था। वह साँसारिक कामों में मन न देते थे। तो भी पिता ने पढ़ाया और काम पर लगाया। १५३२ में गोपाल पण्डित से हिन्दी, १५३५ में ब्रजलाल से संस्कृत और १५३६ में मौलवी कुतबुद्दीन से फारसी पढ़ी। बाद को पिता ने कुछ रुपये दिये। सौदा खरीदने को नियत स्थान पर पहुंच कर वह रुपये साधु महात्माओं को खिला दिये।

१५४१ में आप अपने बहिनोई के यहाँ सुल्तानपुर में चले गए और एक वर्ष बाद सुल्तानपुर के शासक के यहां मोदीखाने में नौकर हो गए। वहां भी जो कुछ देखते, साधु सन्तों को खिला देते। तंग आकर नवाब ने जवाब दे दिया। १५४४ में बटाला निवासी मूलचन्द खत्री की कन्या सुलक्खणी से आप का विवाह हो गया। १५५१ में श्रीचन्द्र और १५५३ में लक्ष्मीचन्द्र-यह, दो पुत्र पैदा हुए। अब आप देशाटन के लिये निकले। २२ कार्तिक संवत १५५४ को आपने पहले-पहल यात्रा की। प्रायः जीवन भर यात्रा ही करते रहे। बड़े-बड़े दुर्गम जंगलों और पहाड़ों को लाँघ कर अनेक स्थानों पर गए। १५६२ में बैशाखी वाले दिन हरिद्वार भी पहुंचे। सुमेरु पर्वत पर भी गए और कई कहते हैं मक्के भी गए। जहाँ-जहां भी गए, बड़े सीधे और मनोरंजक ढंग से धर्मोपदेश किया। लोगों को बाह्य आडम्बर छोड़ने की प्रेरणा की। जड़ता और अन्ध-विश्वास हटाने को कहा। यात्रा में आपके साथ दो शिष्य भी थे। एक बाला और दूसरा मरदाना। पहला

हिन्दु और दूसरा मुसलमान था। आप जात-पात और ऊँच-नीच के भेद-भाव को नहीं मानते थे। मेहनत करके कमाए हुए पैसे को विशेषता देते थे। पूंजीपतियों को भी शिक्षा देते थे। एक-दो बार आपको जेल में भी जाना पड़ा। आपकी वाणी में जहां भक्ति और वैराग्य है, वहां राष्ट्रीयता भी है। हिन्दी। कवियों में आप पहले कवि हुए हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय-कविता भी की है। देश की दीन-दशा का भी चित्र खेंचा है। असौज शुदी १०, संवत १५९६ में आप ७० वर्ष की आयु भोग कर संसार छोड़ गए।

श्रीचन्द्र जी (२)

उदासीन-मत के आचार्य श्रीचन्द्र जी का जन्म, ननकाणा साहब (जिला शेखूपुरा) में भाद्रपद शुक्ला नवमी के दिन संवत १५५१ श्री गुरु नानकदेव जी के घर, माता सुलक्खी के उदर से हुआ। उदासीन महात्माओं का विश्वास है कि आप शिवजी का अवतार थे। वह लिखते हैं कि जन्मते ही आपने अपनी माता को शिव रूप में दर्शन दिया और फिर उसकी प्रार्थना पर, बालक बन कर उस की गोद में खेलने लगे।

बचपन से ही आप शान्ति-प्रिय और एकान्त-सेवी थे। बच्चों के साथ खेलते भी थे तो एक धार्मिक नेता के रूप में। उन्हें अवतारों के चरित्र और महात्माओं के उपदेश सुनाया करते थे

आपकी इस अलौकिक-प्रतिभा को देख कर, बड़े-बड़े स्याने हैरान रहने लगे और आपके आगे नत-मस्तक होकर मन ही मन आप से शिष्यत्व लाभ लेने लगे। ११ वर्ष की अवस्था में आपके पितामह ने पण्डित हरदयाल जी को बुला कर आपका यज्ञोपवीत संस्कार कराया और उन्हीं के यहां आपको पढ़ने बैठाया। थोड़े ही दिनों में आपने पण्डित जी के तमाम ग्रन्थ पढ़ डाले और माता की अनुमति लेकर संस्कृत की शिक्षा के लिये काश्मीर चले गए।

काश्मीर में श्रीचन्द्र जी पुरुशोत्तम कोल से पढ़ने लगे। यहां भी आपकी विलक्षण-प्रतिभा दिनों में प्रसिद्ध हो गई। बड़े-बड़े दिग्विजयी पंडितों से आपने शास्त्रार्थ किया और उन्हें हराया। फिर आप पढ़ना छोड़ कर दिन भर जंगल में तप करने लगे और रात को गुरु जी के यहाँ से कुछ खाद्य-पदार्थ लेकर फिर वहीं जा टिकने लगे। इन्हीं दिनो काश्मीर में एक और महात्मा का आगमन हुआ। उनका नाम था, अविनाश मुनि। आप उन की प्रतीक्षा कर रहे थे, वह आपको ढूंढ रहे थे। पुरुशोत्तम कौल की कृपा से दोनों का मेल हो गया। आषाढ़ की पूर्णिमा को आपने उनसे उदासीन-मत में प्रवेश किया। अब आप काश्मीर से भारत-भ्रमण को निकले।

पाँच वर्ष तक आप नैपाल, तिब्बत और भूटानादि में भ्रमण करते रहे। फिर अनेक तीर्थ स्थानों से होते हुए कार्तिक शुक्ल द्वितीय, संवत् १५८१ को मथुरा पहुंचे। वहां से चलते-चलते १५८२ में शिवरात्रि के अवसर पर काशी पधारे। फिर जगन्नाथ पुरी से होते हुए पंजाब पहुंचे। इस बीच में आप का अनेक सन्त महात्माओं और भक्त जनों से मेल-मिलाप हुआ। धन्ने

जट्ट को भी आप मिले। ३२ वर्ष बाद, श्रावण मास की अमावस्या को पिता के दर्शन किये और फिर काश्मीर चले गए। वहाँ सात वर्ष रहे। इस बीच में आपने वेद-चतुष्टय पर भाष्य रचा। तदन्तर फिर भ्रमणार्थ निकल गए। १५६५ में पेशावर पहुंचे और वहाँ से काबुल होते हुए कन्धार पहुंचे। वहाँ से बिलोचिस्तान होते हुए, घूमते-फिरते 'देहरा-बाबानानक गए। वहां माता भी अपने प्रिय पुत्र से मिल कर सन्तुष्ट हुई। फिर सिन्ध का दौरा करते हुए एक स्थान पर राणा प्रताप से भी मिले और उसे उपदेश दे कृतार्थ किया। एक समय सम्राट् जहाँगीर से भी मिले और समर्थ गुरु रामदास से भी मिले।

इस प्रकार अनेक सन्त महात्माओं से मिलते, पंचदेवोपासना का प्रचार करते, आखिर श्रीचन्द्र जी चम्बा पहाड़ पर गए और वहाँ से ऐरावती (रावी) नदी पार करके अदृश्य हो गए। यह १७०७ की बात कहते हैं।

श्री गुरु अंगद देव (२)

(दूसरे गुरु)

इनका पहिला नाम भाई लहिणा था। ११ वैशाख संवत १५६१ में नागे की सराय (जिला फिरोजपुर) में पैदा हुए। पिता का नाम भाई फेरूमल और माता का नाम निहालकौर था।

१६ माघ १५७६ में देवीचन्द खत्री की सुपुत्री जीवो बीबी के साथ विवाह हुआ। कुल चार सन्तानें हुईं। १५८१ में दास जी, १५८६ में बीबी अमरो, १५९१ में बीबी अनोखी और १५९४ में दाता जी।

भाई लहिणा, दुर्गा के बड़े भक्त थे। संवत १५८९ में वैश्नो-देवी (जम्मू रियासत में एक पहाड़ पर) के दर्शनार्थ जा रहे थे। रास्ते में खडूर साहिब निवासी भाई जोधाजी की प्रेरणा से कर्तारपुर में गुरु नानकदेव जी के दर्शनार्थ उतर गए। सत्संग करके इतने प्रसन्न हुए कि वहीं रहने लग गए। परिवार को भी वहीं बुला लिया। योग्य जान कर मगसर १५९४ में गुरु नानकदेव ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी नियत कर दिया। अपनी गद्दी का स्वामी बना दिया। नाम लहिणा से गुरु अंगददेव कर दिया। गुरु गद्दी पाकर गुरु अंगददेव पहिले से भी ज्यादा उत्साह और लग्न के साथ गुरुमत का प्रचार करने लगे। गुरु नानकदेव की तरह, आपने भी वाणी का निर्माण किया और क्रियात्मक प्रचार भी किया। सिक्खों में जो 'लंगर' (अन्न-क्षेत्र) की रस्म है, उस का आरम्भ आपने ही किया। पारस्परिक भेद-भाव मिटा कर, प्रेम बढ़ाने वाला यह एक बहुत जरूरी काम है। आगे चल कर सिक्खों का संगठन करने में इसने बहुत सहायता की। आज भी कर रहा है। दूसरा काम आपने किया, १६०१ में 'जन्म साखी भाई बाले वाली' का निर्माण कराया, यह गुरु नानकदेवजी का जीवन-वृत्तान्त है। इसके द्वारा भी गुरु नानकदेव जी की महिमा खूब बढ़ी और लोगों ने नानक-मत को अपनाया। यह पंजाबी भाषा के पुराने गद्य का भी नमूना है। पहिले तो गुरुमुखी अक्षरों के निर्माता भी गुरु अंगददेव को ही कहा जाता था, पर

अब जरा दूसरा मत भी प्रबल हो चला है। वह यह कि गुरुमुखी अक्षरों के निर्माता गुरु अंगददेव नहीं, गुरु नानकदेव थे। इसके प्रमाण में गुरु नानकदेव की एक वाणी 'पैंती अक्खरी' भी पेश की जाती है।

गुरु अंगददेव की महानता का असर हिन्दुओं पर ही नहीं मुसल्मानों पर भी था। बड़े-बड़े राजाओं और बादशाहों पर भी था। वैसे बादशाह लोग धर्माचार्यों को अपने हाथ में रखने की कोशिश भी किया करते हैं। बुद्ध के पीछे भी अनेक राजा लोग लगे रहते थे।

एक बार बादशाह हुमायूं, शेरशाह से हार खाकर गुरु अंगद देव की सेवा में आया, सहायता पाने के लिये। गुरु साहब ध्यानावस्थित थे। कुछ न बोले। यह देख कर हुमायूं को गुस्सा आया और तलवार निकाल कर गुरु साहिब पर वार करना ही चाहता था कि गुरु साहिब ने नेत्र खोल कर कहा—'सज्जन! शेरशाह के आगे तेरी यह तलवार कहाँ गई थी। सुनकर हुमायूं लज्जित हो गया। गुरु साहिब ने आशीर्वाद दिया और कहा—'तू सफल होगा' और हुआ।

चैत्र शुक्ला चौथ १६०६ में गुरु साहिब ने संसार त्याग किया।

श्री गुरू अमरदास जी (४)

(तीसरे गुरू)

यह भगवान् राम के छोटे भाई भरत जी के वंशज कहे जाते हैं। इनका जन्म 'बासर के' (जिला अमृतसर) में वैशाख शु० १४ सं० १५३६ में हुआ पिता का नाम तेजभान भल्ला और माता का नाम सुलक्खी था। ११ माघ १५८२ में सनखत्रे गाँव के देवीचन्द बहिल की कन्या रामोजी से इनका विवाह हुआ। सन्तान चार हुई। १५६१ में बीबी भानी, १५६३ में मोहन जी, १५६६ में मोहरी जी और १६०१ बीबी निधानी जी।

गुरु अंगद देव जी की कन्या बीबी अमरो गुरु अमरदास जी के भतीजे को व्याही हुई थी। वह प्रति दिन गुरू नानक और गुरू अंगददेव की वाणी का पाठ किया करती थी। उसी से प्रभावित होकर गुरू अमरदास, गुरू अंगददेव के पास चले गए और रिश्तेदारी का संकोच छोड़ कर वहीं रहने लग गए। उन्होंने इस प्रकार गुरू अंगददेव की सेवा और अभ्यार्थना की कि १ माघ संवत् १६०६ में गुरू अंगददेव ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी ही नियत कर दिया। गुरू अंगददेव के पुत्र दाता को यह बात असह्य हो उठी और उसने गुरू अमरदास का अपमान भी किया पर अमरदास की नम्रता ने उसे कौड़ी का कर दिया।

गुरू अमरदास की एक बेटी बीबी भानी थी। वह होने वाले

चौथे गुरु रामदास को ब्याही हुई थी। एक बार गुरु अमरदास एक चौकी पर बैठ कर स्नान कर रहे थे। अचानक चौकी का एक पावा टूट गया। बीबी भानी ने उस जगह अपना हाथ रख दिया। अमरदास जी को तब पता लगा, जब वह स्नान कर चुके और पावे की जगह लगे हुए एक कील के चुभ जाने से उन्हों ने भानी के हाथ से खून बहते देखा। बच्ची की सेवा से गद्‌गद हो कर बोले—'बेटी ! मांग जो मांगना है। उसने कहा—गुरु गद्दी मेरे स्वामी को मिले और सदा मेरे वंश में ही रहे।' गुरु अमरदास ने तथास्तु कहते हुए कहा—'बेटी तूने अच्छा नहीं किया है ! तेरी सन्तान सुख न पायगी। मैं क्या कर सकता हूं ईश्वर को ऐसा ही मंजूर है। फिर १६२७ में गुरु रामदास को गुरु-गद्दी देदी।

भाद्र शुक्ल १५ संवत् १६३१ में गुरु अमरदास इस असार संसार को त्याग गए। अपने जीवन में गुरु अमरदास ने भी वाणी रचने के अतिरिक्त, कई उत्तमोत्तम कार्य किये। उन के समय में गुरु के श्रद्धालुओं और सेवकों की संख्या काफी हो गई थी, और दूर-दूर तक फैल गई थी। कार्य को सुचारु रूप से चलाने के विचार से भिन्न भिन्न स्थानों में आपने २२ प्रतिनिधि नियत करदिए। यह गुरु साहबकी २२ मंजियें कहलाती थीं। कहां कहां थी, पता नहीं चलता। सूर्य-प्रकाश भी सहायता नहीं करता।

दूसरा महत्व पूर्ण काम जो गुरु अमरदास ने किया, वह यह (जिला अमृतसर) में एक सुन्दर बावली बनवाई। इसका बनवाना १६१६ वि० में शुरू हुआ। और भी कई काम आपने किये।

श्री गुरु रामदास जी (५)

(चौथे गुरु)

गुरु रामदास जी का जन्म, कार्तिक कृष्ण २ संवत् १५६१ में लाहौर की चूणा मण्डी में हुआ था। पिता का नाम हरिदास और माता का नाम दयाकौर था। गुरु-गद्दी मिलने से पहले आपका नाम भाई जेठा जी था। छोटी अवस्था में ही माता-पिता का देहान्त हो जाने से आपको नानी के घर में रहना पड़ा। नानी भी बड़ी गरीब थी। जरा बड़े होने पर उसने उबले हुए चने बेचने का धन्दा करा दिया। १६ फाल्गुण संवत् १५६६ में गुरु अमरदास की कन्या बीबी भानी के साथ आपका विवाह हुआ। बचपन की शादी का उस समय आम रिवाज था। शादी हो जाने पर आप श्वसुर-घर में ही रहने लगे। संवत् १६२७ में अपने श्वसुर गुरु अमरदास से आप को गुरु-गद्दी मिल गई। संवत् १६०४ में पृथ्वीचन्द, १६०८ में महादेव और १६१० में अर्जुनदेव—यह तीन पुत्र भी आपके घर में हुए। भाद्र शुक्ल ३ संवत् १६३८ में गोइन्दवाल (जिला अमृतसर) में जहाँ आप रहते थे, देह त्याग कर गए।

अपने छोटे से—केवल ४७ वर्ष के—जीवन में आपने अनेक महत्व-पूर्ण कार्य किए। जिस राजनीति-मिश्रित धार्मिक सम्प्रदाय को गुरु नानकदेव ने जन्म दिया था, उसे आपने अपनी महान् दूरदर्शिता और बुद्धिमता से खूब उन्नत और दृढ़ किया।

वाणी रचने के अतिरिक्त, सब से पहिला महत्व पूर्ण कार्य

जो आपने किया, वह है अमृतसर नगर की स्थापना। यह नगर, उस प्रान्त के ठीक बीच है, जिस में जबरदस्त-ताकत-वाले सिक्ख-किसान रहते हैं। अपने ताकतवर अनुयायी बढ़ाने में यह नगर गुरुओं को बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। जब गुरुओं ने अत्याचारी-शासन के विरुद्ध जंग जारी किया तो अधिकांश भर्ती इसी हैडक्वाटर से मिलती रही। दूसरा अमृतसर नगर सदा से ही पंजाब का सब से बड़ा केन्द्र रहा है। इस नगर के व्यापार का सम्बन्ध, न केवल भारत तक ही सीमित रहा, बल्कि योरप और अमेरीका तक भी जुड़ गया। आज भी इस नगर का यही हाल है। महाराजा रणजीतसिंह के समय इस नगर की चुंगी नौ लाख रुपया सलाना थी।

आरम्भ में अमृतसर नगर एक छोटा सा गांव था। वहाँ एक छोटासा सरोवर भी था। कहते हैं, कई बार गुरू नानकदेव जी उस सरोवर पर पधारे थे। जब गुरू रामदास जी ने उस सरोवर पर एक कुटिया भी बनाली तो उसे और भी चार-चाँद लग गए। सन् १५७७ ई० में अकबर ने अपने राजनीतिक स्वार्थों को साम्हने रख कर वह सारी जमीन, जो सरोवर के इर्द गिर्द थी, गुरू जी को भेंट में देदी। साथ ही इसके पांच सौ बीघा और भी। गुरु जी ने सात सौ अकबरी रुपया देकर वहाँ खेती करने वाले किसानों का हक अदा कर दिया। सब से पहिले अमृतसर में ३२ दुकानें बनीं, जो बाजार-बत्तीहट्टा के नाम से अब तक प्रसिद्ध हैं। फिर धीरे-धीरे और बननी शुरू हो गईं। अब तो कहना ही क्या है।

अपने पूर्व गुरुओं की तरह, गुरू रामदास में भी त्याग की

मात्रा बहुत अधिक थी। सात्विकता और परोपकारिता भी हद दर्जे की थी।

श्री गुरु अर्जुनदेव जी (६)

(पांचवें गुरु)

गुरु रामदास जी के तीसरे पुत्र गुरु अर्जुनदेव जी का जन्म, १६ वैशाख संवत् १६१० में गोइन्दवाल (जिला अमृतसर) में हुआ। माता का नाम भानी जी था। विवाह आपके दो हुए। एक संवत् १६२२ में मौड़-गाँव वासी चन्दनदास खत्री की कन्या रामदई जी से हुआ और दूसरा २३ आषाढ़ संवत् १६४७ में मऊ-गांव (जिला फिलौर) के किशनचन्द खत्री की कन्या, गंगा-दई जी से। पुत्र एक हुआ, २१ आषाढ़ संवत् १६५२ में माता गंगादई के उदर से हरगोबिन्द। यही हरगोबिन्द साहिब, आगे चल कर सिक्खों के छठें गुरु हुए। 'सूर्यप्रकाश' में लिखा है कि एक बार उन्हें शीतला का प्रकोप हुआ था। तब माता गंगादई ने अमृतसर में शीतला पूजन किया था।

गुरु अर्जुनदेव जी अपने पिता के सब से छोटे पुत्र थे। इनका बड़ा भाई पृथ्वीचन्द अकारण इन से डाह करता था। एक बार उसने इन्हें लाहौर भिजवा दिया और अगर यह कोई पत्र

भी भेजें तो वह पत्र भी गुम कर जाने लगा। एक के बाद एक, लगातार तीन पत्र गुरू अर्जुनदेव ने पिता को भेजे। आखिर तीसरे पत्र पर सब भेद खुल गया, जिस पर पिता रामदास जी, पृथ्वीचन्द पर बहुत नराज हुए और अर्जुनदेव को पास बुला कर सदा अपनी आंखों के साम्हने ही रखने लगे। पृथ्वीचन्द ने और भी कई शरारतें कीं, पर फल कुछ न हुआ।

गुरु अर्जुनदेव जी ने कई बड़े-बड़े महत्वपूर्ण, धार्मिक और राजनीतिक काम किए। सब से पहिला यह कि अपने पूर्वज गुरुओं की और कई भक्तों की और अपनी वाणी का एक संग्रह तैयार किया, जो 'आदि गुरु ग्रन्थसाहिब' के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरा, १६४५ में अमृतसर में अमृतसरोवर के बीच एक मन्दिर बनवाया, जो आज स्वर्ण-मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। तीसरा तरन तारन-नगर की स्थापना की, जो राजनीतिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण बात थी। चौथा, सिक्खों को 'दसवन्ध' (दशांश) निकालने की आज्ञा दी और उस दसवंध को उगाहने के लिये एक-एक इलाके में एक-एक उगाहिया नियत कर दिया, जो 'मसन्द' कहलाने लगा। इनके अतिरिक्त, कुछ और काम भी किये, जिनके कारण शासकों की निगाह में आप काँटे की तरह चुभने लगे। एक यह कि जहाँगीरके बागी-पुत्र खुसरो की सहायता की। दूसरा, लाहौर के दीवान चन्दुलाल की कन्याका अपने पुत्रके लिये नाता लेना स्वीकार न किया, क्योंकि वह कौमफरोश था। फलतः राज-विद्रोह के अभियोग आप कैद कर लिये गये। लाहौर के किले में रक्खा गया। वहां बड़े-बड़े कष्ट दिये गये, पर गुरु साहब जरा भी न घबड़ाए। आखिर गुरु साहिब को गाय की कच्ची खाल में बन्द कर देने का फैसला हुआ। यह गुरु साहिब

के लिये असह्य था। वह खाल में मढ़ जाने से पहले आज्ञा लेकर रावी में स्नान करने ऐसे धँसे कि फिर बाहर नहीं निकले। यह घटना ज्येष्ठ शुदी ४ संवत् १६६३ की है।

श्री गुरु हरगोविन्द जी (७)

(छटे गुरु)

इनका जन्म, २१ आषाढ़ संवत १६५२ में वडाली नामक गांव में हुआ था। पिता का नाम गुरु अर्जुनदेव। माता का नाम गंगादई। विवाह तीन हुए। एक २२ भाद्रपद सं० १६६१ में डले-गांव के नारायण खत्री की कन्या दमोदरी से। एक, तीन वैशाख संवत् १६७० में अमृतसर के हरिचन्द खत्री की सुपुत्री नानकीजी से और एक, ११ श्रावण १६७२ में मण्डियालीके दयाराम मरवाहे खत्री की कन्या महादेवी से। पहिली पत्नि से १६७० में गुरदित्ता जी और १६७२ में बीबी वीरो जी। दूसरी पत्नि से, १६७९ में गुरु तेगबहादुर जी और तीसरीसे १६७४ में सूरजमल, १६७६ में हरराय जी और १६७७ में बाबा अटल जी पैदा हुए। इन विवाहों के अतिरिक्त, एक और विवाह भी हुआ। वह एक मुसलिम कन्यासे हुआ। उसका नाम आपने कौलां रक्खा अमृतसर में 'कौलसर' उसी की स्मृति में है। यह विवाह गंधर्व-विवाह कहा जा सकता है।

ग्यारह वर्ष की अवस्था में गुरू हरगोविन्द साहिब को गद्दी मिल गई। आप राजकीय-ठाठ से रहते थे और कमर में दो तलवारें बांधते थे। एक तलवार धार्मिक प्रचार के लिये, दूसरी अत्याचारी-शासन का अन्त करने के लिये। कुश्ती लड़ने, डंड पेलने अस्त्र-शस्त्र चलाने और घोड़े की स्वारी करने का आपको बहुत शौक था। आपने एक छोटी सी सेना भी तैयार कर ली। आरम्भ में बादशाह जहाँगीर से आपकी बहुत मित्रता थी, पर आगे चल कर बहुत बिगाड़ हो गया। इनके पिता पर जो दो लाख रुपया जुर्माना हुआ था, वह इन से माँगा जाने लगा। इन्होंने देने में असमर्थता प्रकट की। बादशाह ने इन्हे कैद कर के ग्वालियर के किले में भेज दिया। लाहौर के सन्त मियांमीर के कहने से बादशाह ने इन्हें छोड़ दिया। ग्वालियर के किले में ५२ राजे भी कैद थे। इन्होंने साथ ही उन्हें भी छुड़वा दिया। बादशाह फिर इन पर प्रसन्न हो गया। कहते हैं कि इनके कहने पर बादशाह ने इनके पिता के विशेष-विरोधी चन्दुलाल को, इनके हवाले कर दिया था और सिक्खों ने उसे मार डाला था।

गुरु साहिब को भ्रमण का भी बड़ा शौक था। स्मारक-चिन्ह बनाने की भी बड़ी अभिरुचि थी। १६६६ में आपने अपने पिता की यादगार में लाहौर में 'देहरा' बनवाया। ब्यास-नदी के पास हरगोबिन्दपुरा बसाया। जैसा कि ऊपर कहा गया है, कौलां की यादगार में "कौलसर" बनवाया। १६८५ में अमृतसर में ही बिवेकसर भी बनवाया।

अपने जीवन में आपने युद्ध भी कई किये। १६८५ में अमृतसर के नजदीक, १६८७ में जालन्धर के नजदीक,

१६८८ में मालवा में गुरुसर के मुकाम पर कामबेग सेनानी के साथ और १६६१ में काले खाँ पैंद खां आदि के साथ।

इस प्रकार एक अद्भुत जीवन बिताते हुए, चैत्र शु० ५ सं० १७०१ में गुरु हरगोविन्द परलोक सिधार गए।

श्री गुरु हरराय जी (८)

(सातवें गुरु)

माघ शु० १३ संवत् १६८६ में पैदा हुए कीरतपुर में। पिता का नाम भाई गुरदित्ता जी और माता का नाम निहाल कौर जी। विवाह कितने हुए, निश्चित नहीं है। कोई कितने और कोई कितने बतलाता है। एक विवाह कोट कल्याणी से भी हुआ कहा जाता है। कोट कल्याणी, किसी डोले के साथ आई हुई दासी थी। कहते हैं, रामराय उसी से पैदा हुए थे। एक पुत्र हरिकृष्ण पैदा हुए, जो आगे चलकर सिक्खों के आठवें गुरु कहलाए। चैत्र शु० १० सं० १७०१ में हर राय जी को गुरु-गद्दी मिल गई। आप ज्यादतर एकान्त-सेवन ही करते थे, पर समय आने पर मैदान में भी निकल आते थे।

शाहजहां का बड़ा बेटा दारा, गुरुहरराय का भक्त था।

उपकृत था। सन् १६५८ में जब औरंगजेब की फौज बड़ी तेजी से उसका पीछा कर रही थी तो उसने गुरू हरराय से सहायता की याचना की। गुरु साहब फौरन सहायता के लिये तैयार हो गए और उनकी फौजने औरंगजेब की फौज को तब तक व्यासनद पर बराबर रोके रक्खा, जब तक कि दारा भाग कर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंच नहीं गया। इस घटना के बाद, फिर गुरू साहिब ने कभी हथियार नहीं उठाये। जरूरत ही नहीं पड़ी।

दारा की सहायता करने के कारण, औरंगजेब गुरू हरराय पर मन ही मन बहुत क्रुद्ध था। गुरू साहिब को फँसाने के लिये उसने एक चाल चली। गुरू साहिब को बुला भेजा। गुरु साहिब ने आप न जाकर अपने बड़े पुत्र रामराय को भेज दिया। यह बात वैशाख संवत् १७१५ की है। उस समय रामराय की अवस्था केवल १५ वर्ष की थी। औरंगजेब ने पूछा—'तुम्हारे ग्रन्थ में यह क्या लिखा है—'मिट्टी मुसलमान की पेडेपई घुमिआर। घड़ भांडे इट्टां कीआँ जलती करे पुकार।' यह मुसलमानों की निन्दा नहीं तो क्या है?' रामराय जी ने उत्तर दिया—'मिट्टी मुसलमान की नहीं' 'मिट्टी बेईमान की' पाठ है। बादशाह चुप हो गया। जब गुरू साहिब को पता लगा कि हमारे पुत्र ने झूठ बोला है तो वह बहुत नाराज हुए और उन्होंने पुत्र को त्याग दिया। रामराय देहरादून चले गये और वहीं रहने लगे।

असौज शु० १० संवत् १७१८ में गुरू हरराय जी ने अपने छोटे पुत्र, हरिकृष्ण जी को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। यह महानुभाव बहुत छोटी अवस्था में ही देह-त्याग गये थे। देह त्यागने से पहिले इन्होंने अपने दादा के छोटे भाई, गुरू तेगबहादुर को अपना उत्तराधिकारी नियत कर दिया था।

कार्तिक कृ० ६ संवत् १७१८ में गुरू हरराय जी इस असार संसार को त्याग गए। उस समय आपकी अवस्था कुल ३२ वर्ष की थी।

श्री गुरू हरिकिशन जी (६)

(आठवें गुरू)

सिक्ख गुरुओं में यह सबसे छोटी अवस्था के गुरू हुए हैं। इनका जन्म, ६ श्रावण संवत १७१३ में सिक्खों के सातवें "पातशाह" श्री गुरू हरराय जी के घर हुआ था। इनकी माता का नाम श्री मती कृष्णकौर था। इनके एक भाई, जो इन से बड़े थे—श्री रामराय जी थे। उनकी एक गलती के कारण, पिता जी उनसे नाराज हो गए थे, इसलिये वह पिता को प्रणाम कर, देहरादून जा विराजे थे। अतः पिता की गद्दी इन्हें ही मिली। यह अभी पाँच ही वर्ष के थे कि इनके पिता जी का देहान्त हो गया। यह गद्दी पर बैठे पर, दैव को इनका ज्यादा दिन जीवित रहना मंजूर न था, इस लिये आठ वर्ष की अवस्था में ही शीतला रोग से इनकी मृत्यु हो गई। मरने से पहले यह अपने उत्तराधिकारी अपने दादा के छोटे भाई, श्री तेगबहादुर जी को नियत कर गए और गुरुगद्दी के तमाम चिन्ह उन्हें दे गए। गुरू तेगबहादुर उन दिनों बकाला (अमृतसर के पास) नाम के एक

स्थान में रहते थे। समय पा कर वह सिक्खों के नौवें गुरु हुए।

गुरु हरिकिशन जी चाहे बहुत छोटी अवस्था में ही स्वर्ग-सिधार गए पर अपनी विलक्षण-प्रतिभा का परिचय, अपने जीवन के थोड़े दिनों में ही दे गए। जीवित रहते तो न जाने देश और जाति की कितनी भलाई करते।

श्री गुरु तेगबहादुर जी (१०)

(नौवें गुरु)

मगसर सुदी २, संवत् १६७८ में पैदा हुए अमृतसर में। पिता का नाम गुरु हरगोविन्द साहिब। माता का नाम, नानकी जी। विवाह, १५ आश्विन १६८६ में लालचन्द खत्री की कन्या गुजरी जी से हुआ। पुत्र, गुरु गोविन्दसिंह साहिब हुए, पौष सुदी ७, संवत् १७२३ में। गुरु-गद्दी मिली, वैशाख कृ० १३ संवत् १७२१ को अमृतसर के पास बकाला नामक गाँव में। वहां सोढी वंश के २२ और आदमी अपने आपको गुरु प्रसिद्ध कर रहे थे। उन्होंने गुरु तेग बहादुर का बड़ा विरोध किया। यहाँ तक कि उन्हें मार देने में भी फर्क न किया, पर मार न सके। १६ आषाढ़ १७२१ में आप अमृतसर में आए। स्वर्ण-मन्दिर में पधारे। वहाँ पुजारियों ने आपके साथ अच्छा सलूक न किया। खिन्न होकर

आपने कहा 'अमृत सरिये अन्दर सरिये'। २६ असौज, १७२१ में आपने सतलुज के किनारे माखोवाल नामक एक उजड़ा हुआ गाँव खरीद कर, 'आनन्दपुर' नाम से एक नया नगर बसाया।

गुरु तेग बहादुर के बढ़ रहे प्रताप को देख कर औरंगजेब डरा। उस ने उन का कुछ अनिष्ट करने के लिये उन्हें देहली बुला भेजा। राजा जयसिंह ताड़ गया। वह औरंगजेब की ओर से आसाम को जा रहा था, युद्ध करने के लिये। साथ में गुरु तेग बहादुर को भी ले गया। यह घटना १७२२ की है। २२ वैशाख १७२५ को आप आसाम से लौट कर आनन्दपुर में आगए।

औरंगजेबके अत्याचारों से तंग आकर कुछ कारमीरी ब्राह्मणों ने गुरु के आगे सहायता की प्रार्थना की। आपने उन्हें कहा कि औरंगजेब से कह दो, अगर हमारा गुरु, तेगबहादुर मुसलमान बन जाये तो हम खुद-बखुद मुसलमान बन जायेंगे'। उन्होंने वैसा ही जा कहा। औरंगजेब ने एक आदमी भेजा गुरु तेग बहादुर को बुलाने के लिये। गुरु साहिब ने यह कह कर उसे भेज दिया कि हम खुद ही आते हैं। १३ आषाढ़ १७३१ को देहली के लिए चल पड़े। चलने से पहले अपने पुत्र, गुरू गोविन्दसिंह को अपनी गद्दी पर बैठा गए। इधर औरंगजेब ने गिरफ्तारी के लिये वारण्ट निकाल दिये और पकड़वाने वाले को एक लाख रुपया इनाम देने की घोषणा कर दी। रास्ते में एक मुसलमान ने यह सब बात गुरु तेगबहादुर से कह दी। उन्हों ने कहा-'तूही हमें ले चल। तुझे एक लाख मिल जायगा।' वह ले कर चला।

मतिदास आदि साथियों के साथ, गुरू तेग बहादुर देहली

पहुंचे। बादशाह ने मुसलमान होने के लिए कहा। न मानने पर मौत की सजा भी सुनाई। किसी ने भी मुसलमान होना स्वीकार न किया। सबसे पहले मतिदास आदि को मृत्यु-दण्ड मिला। फिर गुरू तेगबहादुर की बारी आई। चान्दनी चौक में उनका सिर धड़ से जुदा कर दिया गया। यह घटना मगसर शु० ५ संवत् १७३२ की है।

भाई जीवनसिंह, गुरु तेगबहादुर का सिर और भाई लक्खी-बनजारा शरीर, बड़ी उस्तादी और बहादुरी से गुरु गोविन्दसिंह के के पास ले गया। गुरु गोविन्द सिंह जी ने उनका विधिवत दाह-संस्कार किया।

'ठीकर फोर दिलीस सिर, प्रभुपुर कियो पयान।
त बहादुर सी क्रिया करी न किनहू आन॥

तेग बहादुर की वाणी ग्रन्थ साहिब। में नौवें पातशाह जी के नाम से दर्ज है।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी (११)

(दसवें गुरु)

गुरु तेगबहादुर के पुत्र, माता-गुजरी से पैदा हुए पौष शुदी ७, संवत् १७२३ को पटना साहब में। आरम्भ से ही देश और धर्म के प्यारे एवं महत्वाकांक्षी थे। बहुत छोटी अवस्था में ही गुरु-गद्दी मिल जाने से भारी उत्तरदायित्व आ पड़ा। बड़ी योग्यता से निभाया। थोड़े समय में ही सब प्रकार की शिक्षा हासिल करली। विवाह तीन हुए। एक, १५ ज्येष्ठ १७३० में हरजस मल की पुत्री जीतो जी से। उससे तीन पुत्र पैदा हुए। एक १७४६ में जुझारसिंहजी, एक १७५३ में जोरावरसिंहजी और एक १७७५ में फतहसिंह जी। दूसरा विवाह हुआ भाई रामशरण की पुत्री सुन्दरी जी से। उनसे केवल एक पुत्र पैदा हुआ १७४७ में अजीतसिंह जी। तीसरा विवाह १७६२ में साहिब देवां जी से हुआ

देश की तत्कालीन दुर्व्यवस्था का प्रभाव आप पर सबसे ज्यादा पड़ा। औरंगजेब की पक्षपात-पूर्ण नीति का विरोध करने के लिये आप सर्वस्व कुर्बान करने के लिये तैयार हो गए। उस कार्य-क्षेत्र में उत्तीर्ण होने से पहिले, करीब २० वर्ष तक आप हिमालय के दुर्गम पहाड़ों पर रह कर रचनात्मक कार्य करते रहे। हिन्दी में नये साहित्य की सृष्टि की। वीर-रस का संचार किया। सिखों का संगठन बढ़ाया। देवी का यज्ञ किया। संस्कृत पढ़ने के लिये

अपने शिष्यों को काशी भेजा। इस बीच में रामराय से भी भेंट की। फिर १७५६ की वैशाखी वाले दिन खालसा-पन्थ की नींव रक्खी। एक नई मैनिफ-फोर तैयार की। अब असली कार्य-क्रम शुरू हुआ। सब से पहिले १७५८ में मसन्दों का अन्त किया। यह मसन्द, सिक्खों से उनकी आमदन का दशाँश उगाहने वाले एक प्रकार के उगाहिये थे। बहुत नीच होगये थे। उन्हें दबा देना भी जरूरी था, दबा दिया। पहाड़ी राजा बड़े नीच थे। गुरू साहिब ने उन्हें प्रेम से वश करना चाहा। उल्टा वह गुरू साहिब के शत्रु बन गए। औरंगजेब को गुरू के विरुद्ध भड़काने लगे। गुरू साहिब ने क्षात्रबल से उन्हें अपनी ओर मिला तो लिया, पर ज्यादा देर तक वह साथ न दे सके। गुरु साहिब अपने मुट्ठी भर अनुयाइयों के साथ अकेले ही हकूमत से लड़ते रहे और प्रायः सदा उन्हें हार ही देते रहे। मुगलों ने गुरु साहिब को नुक्सान पहुंचाने के लिये कई चालें चलीं। बहुत देर तक आनन्दपुर के किले को घेरे भी रक्खा। एक बार तो इतनी देर तक घेर रक्खा कि गुरू साहिब के बहुत से अनुयायी तंग आकर, गुरू साहिब का साथ भी छोड़ गए, पर गुरू साहिब नहीं घबराए! उनका उत्साह बराबर बना रहा। आनन्दपुर के किले को छोड़ कर चमकौर के किले में चले गये। किले में प्रवेश करते हुए उन्हें बड़ा भारी जंग भी करना पड़ा। जिस में अनेक सिक्ख मारे गए। गुरु साहिबके अपने पुत्रभी काम आये। चमकोर से गुरू साहिब उच्चका पीर बन कर सुरक्षित स्थान पर पहुंच गए। अब उन्होंने और तो कई काम किए पर युद्ध करना बन्द कर दिया। जो सिक्ख आनन्दपुर के किले में गुरु साहिब को छोड़ गए थे, उन्हें क्षमा कर दिया। औरंगजेब को एक पत्र लिखा, जिस में उस की नीति की आलोचना की। फिर दक्षिण

प्रान्त के नादेड़ नामक स्थान में चले गए,' पर पंजाब का ध्यान बराबर रक्खा। वहाँ वैरागी माधोदास से गुरु साहिब की भेंट हुई। उसे योग्य जान कर अपना प्रतिनिधि बना कर पुनः कार्य आरम्भ करने के लिये पंजाब में भेजा। भाद्रों वदी ४ १७६५ को गुरु साहिब शरीर छोड़ गए। पर नामधारी सिक्ख कुछ और बतलाते हैं। उनके कथनानुसार, उक्त तिथि के बादभी बहुत समय तक गुरु साहिब नाभा में बाबा अजयपालसिंह के नाम से जीवित रहे और गुप्त रूप से कार्य करते रहे। ११वें गुरू बालकसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया।

श्री गुरू रामसिंह जी (१२)

(बारहवें गुरू)

सिक्खों में एक सम्प्रदाय है, 'नामधारी' सिक्खों का। वह गुरु गोविन्दसिंह के बाद, गुरु बालकसिंह और उनके बाद गुरु रामसिंह का होना भी मानते हैं। गुरु रामसिंह का जन्म, माघ शुदी पंचमी संवत १८७२ (सन् १८१५) को लुधियाना के पास राईआँ नामक स्थान में हुआ और लालन पालन हुआ पास ही के एक और गाँव, भैणीसाहब में। आपके पिता का नाम जस्सा-सिंह जी और माता का नाम सदाकौर जी था। जवान होने पर आप फौज में भर्ती हुए पर ज्यादा देर तक न रहे। मन तो लगा

हुआ था भजन में और देशोद्धार में। नौकरी छोड़ कर, भैणी साहब में ही दुकान करली पर वह भी चले कैसे ? दिल हो तब न ? आखिर सब छोड़कर दिन-रात अपने कार्य में लग गए। धार्मिक कार्य-क्रम तो वैसा ही था, जैसा आम संत महात्माओं का हुआ करता है, पर राजनीतिक था महात्मा गाँधी जैसा। सच तो यह है कि असहयोग-आन्दोलन के आविष्य-कर्ता आप ही थे। अपने कार्य-क्रम को चलाने के लिए आपने पंजाब के भिन्न-भिन्न स्थानों में २२ प्रतिनिधि भी नियत किए। यह सूबे कहलाते थे। इनके द्वारा, और गुरु साहब के अपने द्वारा भी, कार्य-क्रम खूब चल निकला। लाखों सिक्ख गुरु रामसिंह जी के अनुयायी हो गए। यह देखकर अधिकारी घबड़ाए। वह गुरुको कुचल देने का अवसर ढूंढने लगे। सन् १८७१-७२ में अमृतसर में यह अफवाह फैली कि स्वर्ण-मन्दिर के नजदीक कसाई-खाना बनने लगा है। उसमें गौएं मारी जायंगी। दो नामधारी सिक्खों को इतना जोश आया कि उन्हों ने अमृतसर के बूचड़खाने पर हमला करके कुछ कसाइयों को मार डाला और गौओं को छोड़ दिया। आप भाग गए। अधिकारियों ने अमृतसरी हिन्दुओं पर सख्ती शुरू करदी। जब गुरू रामसिंह जी को इसका पता लगा तो उन्हों ने कहा कि जिन्हों ने कसाई कत्ल किए हैं, वह खुद सजा भुगतें। कातल 'नाम धारी' फौरन अदालत में हाजिर होकर मौत के घाट उतर गए। इसके बाद, शीघ्र ही मलेर कोटले में एक दुखद घटना घट गई। एक मुसलमान गाड़ीवान जख्मी बहल को जोत कर, उसे पीटता हुआ जा रहा था। एक नामधारी सिक्ख को तर्स आया। उसने मुसलमान को रोका ऐसा करने से। झगड़ा हो पड़ा। आखिर वह दंगे का रूप धार गया। बड़ा भयंकर दंगा हुआ। पुलिस और फौज ने बड़ी मुश्किल से दंगे पर काबू पाया। लुधियाना का

डिप्टी कमिश्नर था उन दिनों कावन-साहब। उसने ८० नामधारी सिक्खों को पकड़ कर, उनमें से ५० को तोप के आगे उड़ा दिया। अगले दिन अम्बाला का कमिश्नर आया। उसने शेष ३० को भी मौत की सजा दी। आन्दोलन फिर भी चलता रहा। गुरु साहिब फिर भी सब को शान्ति का पाठ पढ़ाते रहे। वह स्वभाव से ही शान्ति-प्रिय और विनम्र थे। आत्म-शक्ति भी खूब रखते थे। अधिकारियों ने पता नहीं क्या सोच कर, आखिर गुरु साहिब को, उन के २२ सूबों सहित, निर्वासित कर दिया। नामधारियों का ख्याल है कि गुरु रामसिंह अभी तक जीवित हैं।

नामधारी सम्प्रदाय के सिक्ख आज भी धार्मिकता के साथ साथ राष्ट्रीयता का भाव रखते हैं और गुरु के बतलाये रास्ते पर चलते हैं। उन में हिन्दुत्व काफी मात्रा में हैं पर साथ ही इसके हिन्दुत्व को लगा हुआ कलंक, छूआ-छूत भी उन में बहुत ज्यादा है।

आज कल नामधारियों के सब से बड़े नेता महाराज प्रताप सिंह हैं। आप गुरु रामसिंह जी के भाई हरिसिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र हैं और बड़े सरल एवं सीधे सादे हैं। निराभिमानी और मिलनसार हैं। सब से प्रेम करते हैं।

इस पुस्तक का कागज ला० बंसीधर कपूर एंड संज से कंट्रोल रेट पर लिया

भक्त दुर्गादास अध्यक्ष दुर्गादास प्रेस द्वारा मुद्रित तथा भारत पुस्तक भण्डार द्वारा प्रकाशित